कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 12, Issue 46
April-June, 2015

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE (LIMKA BOOK RECORD HOLDER)

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १२ - अंक ४६, अप्रैल-जून २०१५

नीड़

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

सौन्दर्य
बँध गया था कभी
रोटी के टुकड़े में
आज भी बँधा है
पर रोटी के टुकड़े में नहीं
एक जाला बुन लिया है अब
प्रतिष्ठा के मकड़े ने
और
खड़ा कर दिया है लाकर
आयु के कटघरे में
कैसा शोषक है
काल का अंतराल
निगल गया समय क्षुधा को
पिपासा जीवित रहती है
शायद
अंतिम साँस तक
और हम
हिचकी भरते चल पड़ते हैं
अपने नीड़ की ओर
नीड़ जहाँ बर्रों के छत्ते हैं
लपलपाते साँपों के बिल हैं
भौंकते कुत्ते हैं
और
अपने शव को
शान-शौकत के साथ
ढोते हम हैं
हाँ,
हम हैं.

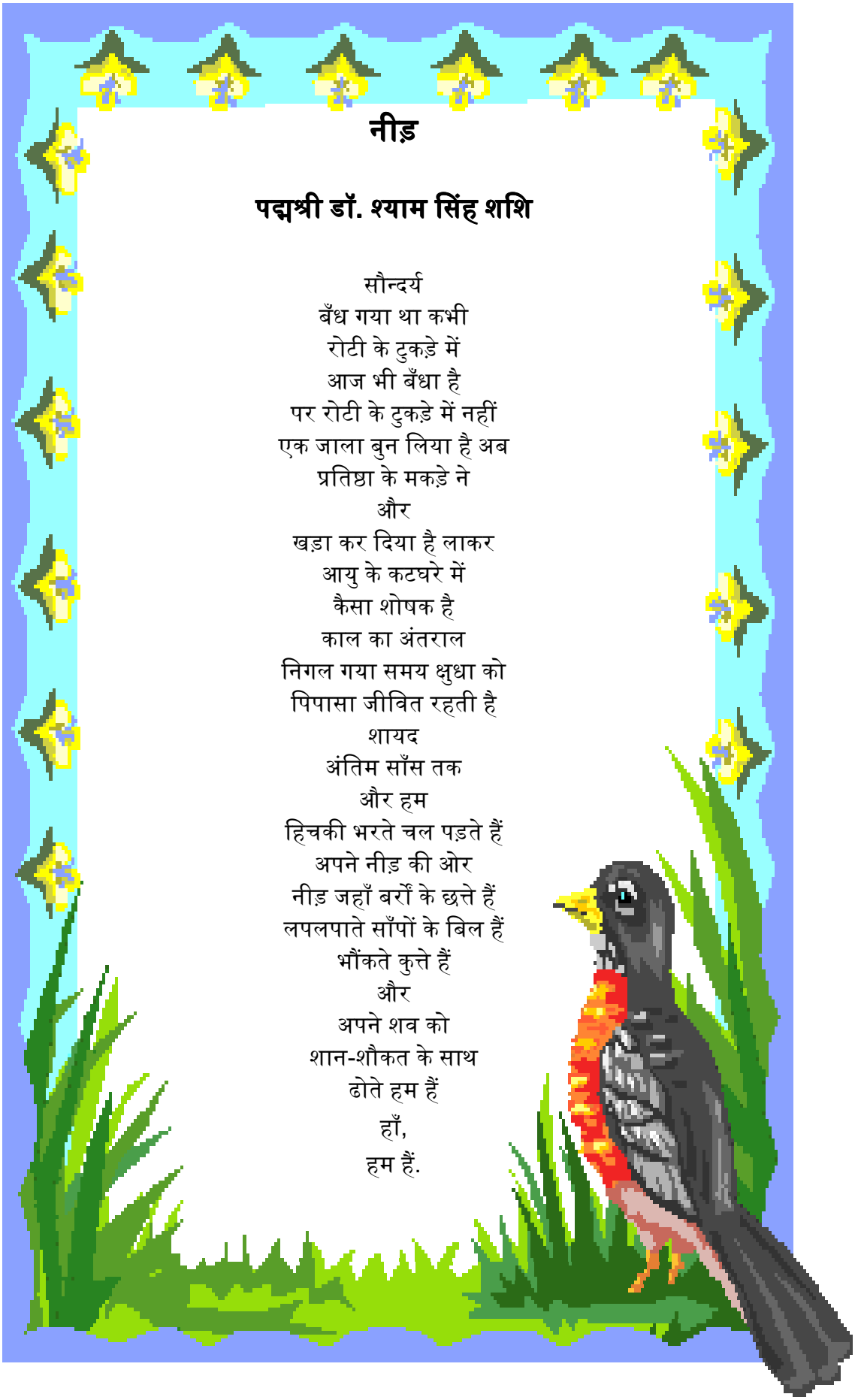

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
मातु शारदे वर दे, वर दे....	डॉ. उमेश चंद्र शुक्ल	३
अनोखा साथी	स्नेह ठाकुर	४
तुम!	पारुल कनानी	९
अस्तित्व	उगमसिंह राजपुरोहित 'दिलीप'	१०
मत मारो	साधना उपाध्याय	१२
नारी बलिदानी क्यों!	स्नेह ठाकुर	१४
हिन्दी समाज को वाणी दो	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	१६
विध्वंस का विकास	राम सिंह यादव	१८
मनभावन ऋतुराज है आया	मनोज कुमार शुक्ला	२५
यदि मैं होता घन सावन का	गोपाल दास नीरज	२७
बदलाव	पद्मा मिश्रा	२९
युगान्तर	मनोरमा तिवारी	३२
रामू काका डॉट कॉम	विजय उपाध्याय	३३
तुम्हारा दावा है दोस्त	डॉ. वेद प्रकाश वटुक	३६
नेमी बाबू	रंजन ज़ैदी	३७
नीड़	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
झरता हुआ राग	चंद्र कांत सिंह	४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रच
नाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

कैनेडा के ऑन्टेरियो प्रांत की प्राकृतिक विशेषता यह है कि यहाँ के चारों मौसम अपने में एक विशिष्ट अनुपम रूप सँजोये हुये होते हैं। चारों के चारों मौसम, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और पतझड़, हर मौसम अपनी दिस्टिन्क्ट् फ्लेवर लिये आते हैं, सुस्पष्ट लक्षणों से विभूषित होते हैं। सर्दी पड़ेगी तो ऐसी कड़क पड़ेगी कि आपकी हड्डियाँ जमा देगी। कोमल वसंत कब चुपके से आकर ऐसी कड़ाके की सर्दी को मात दे जायेगा कि अपनी ऐंठ में पसरी हुई बरफ़ यह जान भी नहीं पाती कि कब चुपके से धरती पर पसरे हुये उसके साम्राज्य में हरी-हरी घास ने सेंध लगा ली है। वह अचानक अचम्भित हो हरी दूब की इस गुस्ताख़ी पर कसमसा उठती है। गर्व से गर्वित उसकी चँदीली चमचमाहट पर पानी फिर जाता है। ग्रीष्म नव-पल्लव से अठखेलियाँ करता हुआ, कभी माँ की तरह आँचल में समेट व कभी बाप की तरह उनकी रक्षा करता हुआ देखते ही देखते उन्हें यौवन की चौखट पर ला कर खड़ा देता है। और तब प्रकृति विभिन्न रंग-बिरंगे परिधानों से लिपटी नवयौवना-सी इठलाती चाल से सबको सम्मोहित कर लेती है। और फिर पतझड़। आह ! पतझड़, पर एक शाश्वत् सत्य। चिरन्तर कुछ भी नहीं है। आवागमन, आवागमन।

यदि पतझड़ शाश्वत् सत्य है तो नव-जीवन भी तो एक शाश्वत् सत्य है। यहाँ के वसंत की अपनी ही एक निराली छटा है। आप लेखनी से कवि हों या ना हों, यह मौसम आपको अपने नैसर्गिक सौन्दर्य से अभिभूत कर संवेदनशील कवि-हृदय अवश्य बना देता है। आपके मन-मयूर को प्राकृतिक छटा के लय-ताल पर सुर से सुर मिला मग्न हो नाचने पर विवश कर देता है। वैरागिनी धरती की छाती से अचानक सिर उठाती हुई ट्यूलिप की छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं कोमल कोंपलें, एक बार लगाने पर साल-दर-साल स्वयं ही प्रस्फुटित हो आपको यह एहसास करा जाती हैं कि पाषाण-हृदय चीरा जा सकता है। ये जीवंत उदाहरण हैं कि यदि आप गहरे खोदेंगे, गहराई में जायेंगे, प्रतिदिन प्रयास करेंगे तो आप अवश्यमेव ही, निःसंदेह अपनी पूर्ण सम्भाव्य कार्यक्षमता प्राप्त कर लेंगे। "जिन खोज़ा तिन पाइयाँ" की कहावत को सार्थक करते हैं। सूखे ठूँठ से खड़े पात विहीन वृक्ष पर दो-चार दिनों के अन्तराल में ही एक अनोखी हरीतिमा लिये पल्लवित किसलय यह संदेश देते हैं कि जीवन चाहे कितना ही नीरस या कठोर क्यों न हो, आप चाहें तो नन्हे-नन्हें प्रेम-पल्लव से आप उसे सरस, मधुमय, सुरभिपूर्ण बना सकते हैं। आत्मा की यह आनंदानुभूति न केवल आपको बाह्य वातावरण को साफ करने की प्रेरणा देती है वरन् अंतःकरण को भी अभिसिंचित कर उसमें नव-प्राण फूँकने को भी प्रेरित करती है। शिशिर की मार से बचने हेतु हमें छोड़ कर गये पंछी पुनः नये घोंसले बनाने की आस लिये वापिस आ अपनी चहचहाहट से हमारे जीवन को अपने संगीत की मधुर लहरियों से भर यह बताने से नहीं चूकते कि कष्ट के बाद सुख के दिन आएँगे ही आएँगे।

वसंत के नव आगमन पर आइये हम सब भी अपनी कार्यक्षमता को पहचानें। अपने उन प्रयासों को दृढ़-प्रतिज्ञ हो गति दें, उनके प्रति पूर्णरूपेण कमरबद्ध हो जायें जो हमें हमारी अभिलाषाओं, हमें हमारे जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसित कर सकें। वसंत को उस मील के पत्थर के रूप में बना लें जिसके इर्द-गिर्द हम अपने जीवन की बगिया को पल्लवित, पुष्पित, सुरभित कर सकें। न केवल स्वयं अपने जीवन का आनंद उठा सकें, अपने आस-पास को भी महका सकें, दूसरों का जीवन भी सुखमय बना सकें। जिस तरह प्रकृति मुक्त हस्त बिना भेदभाव किये सबको अपनी छवि से आनन्दित करती है, मानव भी मानवता के पथ पर बढ़, मानव कल्याण कर, मानव जीवन को सार्थक करें।

प्रकृति के चराचर को मंगल-कामनाओं में समेटे, अपने उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा" के लिए साहित्य अकादमी म. प्र. द्वारा दिये गये अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान हेतु आप सभी आत्मीय जनों की बधाई के लिए आभार सहित,

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

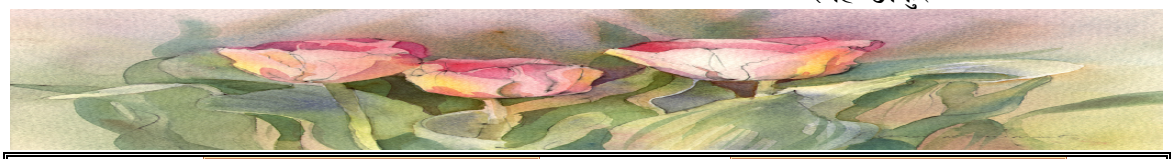

मातु शारदे, वर दे, वर दे....

डॉ. उमेश चन्द्र शुक्ल

मातु शारदे, वर दे, वर दे शारदे, वर दे
वीणा के झंकृत तारों से
मेरा प्रांगण भर दे, भर दे
मातु शारदे, वर दे, वर दे शारदे, वर दे ।।१।।
गहन तिमिर के जाल हटा कर
जीवन के आतंक मिटाकर
आशीषों की सुभग लहर से
जीवन सुखमय कर दे
माँ शारदे वर दे, वर दे शारदे, वर दे ।।२।।
आर्य धर्म की पावन शिक्षा,
सत्य न्याय से जुड़ी समीक्षा
कर्म पंथ पर चलाने वाली
पीढ़ी में श्रम भर दे
माँ शारदे वर दे, वर दे शारदे, वर दे ।।३।।
सनातनी वैदिक विचार से
नये ज्ञान-विज्ञान-प्यार से
नवल राग, नव जीवन, नव मति
चिर नवल नवता, नूतनता भर दे
नव वीणा के नवल तान पर
ज्ञान कोष परिसर में भर दे
मातु शारदे वर दे, वर दे शारदे, वर दे ।।४।।
मंजुल-मंगल मंगलाचरण
मधुर मंगल पावन ज्योति
वीणा के झंकृत तारों से
मेरा प्रांगण भर दे, भर दे
मातु शारदे वर दे, वर दे शारदे, वर दे ।। ५।।
मंगल की संकल्प शक्ति से
अटल साधना देश-भक्ति से
प्रकट हुई जो जीवन गीता
माँ, इसमें पुरुषार्थ शक्ति की तू ऊर्जा भर दे
मातु शारदे वर दे, वर दे शारदे, वर दे ।।६।।

अनोखा साथी

स्नेह ठाकुर

वसन्त बड़े चुपके से, दबे पाँव, धीरे-धीरे शिशिर के घर में घुस रहा था। शिशिर ने उसे घुसते हुए अपनी अधमिचीं आँखों से देख तो लिया था पर बोला कुछ नहीं। चार महीने से अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए, अपनी ऋतु की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए प्रकृति के नियमानुसार क़हर ढाते-ढाते वो अधमरा हो गया है। अब वह न केवल सुस्ताना चाहता है वरन् अब तो वह कुम्भकर्ण की तरह कई महीनों के लिए चैन की नींद सोना चाहता है। कितना कुछ परिश्रम करना पड़ता है उसे शिशिर ऋतु की कड़क शीतलता बनाए रखने के लिए.... हड्डियों को कुल्फी की पर्तों की तरह जमाती हवा, हवा में ठंडी तेज़ धार के झोंके पंजों में चाकू बाँधे मुर्गों की तरह घात लगाकर वार करते हुए उड़ते फड़फड़ाते, हिमपात, क्या कुछ मशक्कत नहीं करनी पड़ी है उसे....वह तो बिल्कुल निढ़ाल हो जाता है। यह तो बस उसी के बूते का है। कोई और ज़रा करके तो दिखाए.... पसीने-पसीने नहीं हो जाएगा....यह तो बस उसी में निहित अथक वज्र शीत-शिला की वज़ह से वो पसीना-पसीना नहीं होता है। पर कोई कब तक इस भयंकर शीत-शिला को उठाए रखेगा....न थकने की भी एक सीमा होती है। कृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत कुछ समय के लिए ही तो उठाया था आजीवन नहीं....न, न, बस अब और नहीं, अब मेरे भी विश्राम का समय आ गया है।

वसन्त के आगमन की खुशी में स्कूलों की एक हफ्ते की छुट्टियाँ हो गई हैं। पेड़ों पर चहुँ ओर नवजीवन का संदेश बिखेरती नव-कोंपलें उभर आई हैं। सेव के वृक्षों पर गुलाबी-सफेद फूल ही फूल छिटक पड़े हैं। जहाँ कई झाड़ियाँ पत्तों से भर रही हैं वहीं फ्लावरिंग बुश की झाड़ियों पर पहले पीले-पीले मनलुभावन फूल आते हैं बाद मे हरी पत्तियाँ....प्रकृति की छटा भी अनोखी है। मैग्नोलिया भी अपने सफेद-गुलाबी-जामुनी रंगों के फूलों की बहार बिखेरने की तैयारी में है। कैनेडा की विशिष्ट चार ऋतुओं की विशिष्टताएँ स्वयं मे निराली हैं।

दोपहर की गुनगुनी धूप चारों ओर बड़े आराम से सुस्ताती हुई पसरी पड़ी थी। नीरा बाहर खेलने के लिए मचलने लगी। माँ और मौसी अपनी बातों में इतनी व्यस्त थीं कि बार-बार व्यवधान पड़ने पर आख़िर उसे बाहर खेलने की इज़ाज़त दे दी। फिर इसमें नुकसान भी क्या था। बच्चे तो बाहर खेलते ही हैं। मौसी के तो बच्चे हैं नहीं, मौसा भी घर नहीं थे, नीरा इस बात पर स्वयं ही मुस्कुरा दी, 'पगली हूँ मैं....मौसा इस समय घर में कैसे होंगे? छुट्टियाँ तो बच्चों की हैं बड़ों की थोड़ी न। इसीलिए तो पापा नहीं आए। बस मम्मी और वो ही आई हैं। पर पड़ोसियों के बच्चे तो बाहर खेल ही रहे हैं न। चलो उन्हीं से दोस्ती कर लेती हूँ। घर के अन्दर तो मौसी का कुत्ता शेरू भी मुझे घास नहीं डाल रहा है। कितनी कोशिश करी खेलता ही नहीं मेरे साथ। आलसी की तरह पड़ा हुआ है।'

नमिता और सुष्मिता दोनों बहनों की बातों का सिलसिला तो खत्म होने में ही नहीं आ रहा था। बातों का एक सिरा फिसलता तो दूसरा पकड़ में आ जाता। घर-गृहस्थी में बार-बार, जल्दी-जल्दी आना-जाना थोड़े ही हो पाता है। बड़े दिनों बाद मिलना हुआ है तो माँ-बाप, भाई-भाभी, चाचा-चाची, रिश्तेदारों की बातें, बचपन की यादें घुल-मिल बिखर-बिखर जा रही हैं। पुरानी बातें व ताजा ख़बरों की रुई धुनी जा रही है। कभी भूत वर्त्तमान पर हावी हो जाता है और कभी वर्त्तमान भूत पर। अन्त में पुरानी स्मृतियों को परे ढकेल भूत पर वर्त्तमान जम कर बैठ गया। होश तब आया जब शरीर में थोड़ी-थोड़ी सिहरन होने लगी....बातों से नहीं, मौसम में छिटके शिशिर की शीतलता से। सूर्य की किरणें न जाने कब की बंद खिड़कियों के काँच खटखटाते निराश हो बहुत दूर चली गईं थीं और जाते-जाते अपनी ऊष्णता भी साथ ले गईं थीं। अब तो बस धूप के थोड़े-से टुकड़े दूर दरख्तों की फुनगी पर बैठे सारे दिन की थकान से सुस्ता रहे थे। पेड़ों के ज़रा से हिलते ही धूप के वो टुकड़े असुरक्षित हो डगमगाते हुए एक-दूसरे की बाँहें थामे दुबक कर बैठने की कोशिश कर रहे थे।

तब अचानक दोनों बहनों को नीरा का ख़याल आया। अरे, नीरा तो अभी तक बाहर ही खेल रही है। नीरा की माँ नमिता नीरा को पुकारते हुए घर के अंदर बुलाने के लिए बाहर चली गई व

घोटी बहन सुष्मिता रसोई में नीरा के लिए दूध और अपने दोनों के लिए चाय बनाने। मिलन की, बातों की खुमारी टूट रही थी, ध्यान आया कि अब तो पति के आने का भी समय हो गया है अतः सुष्मिता दो कप की जगह तीन कप चाय का पानी चढ़ाने लगी।

इसी समय बदहवास-सी नमिता घर में घुसी। वो बाहर नीरा को कहीं न पा बौखलाई-सी हकलाए जा रही थी। दो सेकेन्ड के लिए तो सुष्मिता भी सन्न रह गई फिर पैरों में चपलता भर बाहर की ओर चल पड़ी....'जाएगी कहाँ नीरा? बाहर ही तो खेल रही थी....चलो मैं देखती हूँ....' कहते-कहते वह चल पड़ी और नमिता भी घिसटते पैर उसके पीछे-पीछे हो ली।

दोनों बहनों ने अलग-अलग आवाजें दीं पर नीरा हो वहाँ तो मिले। आख़िरकार सुष्मिता पड़ोस के घरों के बच्चों से पूछने गई, सोचा शायद वह उनके साथ चली गई हो। हालाँकि नमिता कहती रही कि अगर वो वहाँ जाती तो हमसे पूछकर न जाती....पर फिर भी सुष्मिता पड़ोसियों के दरवाज़े खटखटाने लगी।

आशुतोष दफ्तर से लौट खुले घर के अंदर किसी को न पा अचरज में थे। कुछ छनछनाने की आवाज़ सुन उन्होंने रसोई के अन्दर झाँका तो पाया चाय का पानी खौल-खौलकर समाप्त होने को था। स्टोव बन्द कर वो बाहर निकले ही थे कि देखा दोनों बहनें हकबकाई-सी घर की तरफ आ रही हैं, पर हालात से नावाकिफ आशुतोष का उनके चेहरे की उड़ती हवाईयों पर ध्यान ही नहीं गया। वो पत्नी व साली से मज़ाक करते हुए बोले, 'आप दोनो कहाँ की सैर करके आ रही हैं?' दोनों की हकबकाई सूरत पर अभी भी उनका ध्यान न गया, वो अपनी ही झोंक में कहे जा रहे थे, 'मैं तो सोच रहा था कि बड़ी साली जी आई हुई हैं तो आज चाय के साथ गरमागरम पकौड़ियाँ मिलेंगी पर यहाँ तो चाय का पानी भी जलकर राख़ हो रहा है....' दोनों के रुआँसे चेहरे देख उन्हें लगा कि वो शायद कुछ ज़्यादा ही मज़ाक कर गए हैं अतः अपनी समझ में वातावरण हल्का करने के लिए दूसरा मज़ाक कर बैठे, 'अरे भाई इसमें रोने की क्या बात है, चलो माफ़ किया। दोनों बहनें इतनी देर बाद मिली हो अब मेरी याद कहाँ रहेगी....मैं तो दाल-भात में मूसलचन्द बन गया हूँ....' आशुतोष की बात काटते हुए सुष्मिता ने नीरा के न मिलने की बात बताई।

नीरा के बारे में सुन समय की गम्भीरता समझ वो अचकचाकर चुप-से हो गए। कुछ क्षणों में ही अचम्भे की क्षणिक निष्क्रियता से उबर वो भी सक्रिय हो तलाश में जुट गए।

कुछ बच्चों से पता चला कि वो सब तो एक-एककर कब के अपने-अपने घर चले गए थे। एक बच्चे ने बताया कि आख़िर में वो ही बचा था। जब वो भी जाने लगा तो नीरा ने बाहर से झाँककर देखा और बोली कि माँ व मौसी तो अभी भी बातों में मगन हैं और उसे बाहर अच्छा भी लग रहा है तो नीरा के कहने पर थोड़ी देर तो वह और उसके साथ खेला था पर जब उसे ज़्यादा भूख लगने लगी तो नीरा ने कहा कि तुम जाओ, मैं अभी और थोड़ी देर खेलकर अन्दर जाऊँगी।

'नीरा गई कहाँ? धरती निगल गई, आसमाँ खा गया? नीरा इतनी छोटी नासमझ बच्ची भी नहीं है....हाँ, हाँ छोटी है पर....पर इतनी छोटी भी नहीं....आठ साल की है। अचानक नमिता के दिमाग में उमड़ा, 'क्या किसी ने उसका अपहरण कर लिया है। उसे....उसे तो यहाँ कोई जानता भी नहीं और तभी ख़याल आया कि क्या जानने वाले बच्चों को ही किडनैप किया जाता है। अरे अपहरण तो जाने-अनजाने दोनो ही बच्चों का हो सकता है, पर नीरा की तो कोई आवाज़ ही नहीं आई....आवाज़ कहाँ से आती....क्या पता आई हो, मैंने ही न सुनी हो....मैं तो बस बातों ही में मगन थी....सारा कसूर मेरा ही है....' नमिता के धीरज का बाँध टूट रहा था। वह स्वयं को अनेकों प्रकार से लताड़ रही थी।

इस बीच अचानक आशुतोष को कुत्ते का ध्यान आया। पूछने पर एक बच्चे ने बताया कि नीरा शेरू को भी खेल में शामिल करने की कोशिश कर रही थी। शुरू में तो वह नीरा को घास भी नहीं डाल रहा था पर बाद में काफी हिल-मिल गया था। आशुतोष को ताज्जुब हुआ कि शेरू को कई आवाज़े देने पर भी वह कहीं नहीं दिखा, उसका भी अता-पता नहीं...

अब तक पड़ोस के लोग भी ढूँढ़ने में व्यस्त हो गए थे। नमिता के पाँव तो मन-मन भारी हो गए थे। उसे तो एक पाँव उठा दूसरा पाँव आगे रखने में ही मन भर का बोझ लग रहा था। वो तो क्रियाहीन, संज्ञाहीन-सी हो गई थी। हाँ, बस सुबकने की क्रिया लगातार जारी थी। सिर्फ़ वही रुकने में नहीं आ रही थी।

पुलिस को फोन किया गया। उन्होंने नाम-पता, नीरा का पूर्ण विवरण ले खोज़-बीन शुरू कर दी। छोटी बच्ची का मामला है। साँझ गहराने लगी थी फिर भी आस-पास की पीछे की बड़ी-बड़ी झाड़ियों में जहाँ तक जा सकते थे, देख आए थे।

साँझ का धुँधलका धूप सोखने लगा था। पेड़ों की छायाएँ धीरे-धीरे दबे पाँव सरकते-सरकते पसरी धूप दबोच रहीं थीं। हवा में ठंड के दिनों की पगलाहट तो नहीं थी पर वो अभी भी बच्चों की तरह छोटे-छोटे झोंकों में आती; अपनी दोनों मुट्ठियों में जितनी ठंड ला सकती लाती और शैतान बच्चे की तरह बिन देखे कि कहाँ बिखरा रही है, जहाँ-तहाँ बिखरा कर भाग जाती। उसकी इस हरकत के बाद टुकड़े-टुकड़े बिखर गई शांति पुनः अपनी जगह जमने की कोशिश करने लगती।

साँझ का धुँधलका रात के अँधेरे में बदलने लगा था। अब तो सुबह का ही इन्तज़ार किया जाना पड़ेगा। यह नई कॉलोनी बसी है। घरों के पीछे आबादी नहीं है, घना जंगल है। हैलीकॉप्टर से तो यह जंगल कल सुबह ही छाना जा सकेगा और कोई चारा नहीं।

नमिता का तो एक-एक क्षण गुज़रना मुश्किल था। सारी रात कैसे कटेगी....यह तो काटे न कटेगी....पर समय तो अपनी ही गति से चलता रहता है चाहे वो किसी के आनन्द के क्षण हों या दुख के, समय को इससे कोई लेना-देना नहीं। हाँ, यह बात अलग है कि जिसके लिए यह समय आनन्द की बेला का है उसके लिए घंटों भी उस व्यक्ति को कुछ क्षण ही महसूस होते हैं, और जिस पर समय भारी दुख बनकर पहाड़ की तरह टूटता है उसे क्षण भी घंटों समान लगता है। समय की गति पर किसी की भी भावनाओं का कोई असर नहीं पड़ता। समय ना ही किसी के लिए अपनी गति तेज करता है और ना ही किसी के भी लिए अपनी गति में विराम ही देता है। काल-चक्र हर परिस्थिति से अनजान, निस्पृह हो, अबाध गति से चलता ही रहता है....बस चलता ही रहता है।

नीरा की बाहर खेलने की ज़िद पर मौसी ने ही कहा था, 'चल बाहर ही खेलना है तो पहले कुछ खा तो ले।' नीरा देर से खाए हुए लंच से ही अभी निजात नहीं पा सकी थी ऊपर से और खाने की बात....राम-राम....पर साथ ही वो बहस के चक्कर में पड़ समय बर्बाद नहीं करना चाहती थी, बाहर जाने की उतावली जो थी। अतः मौसी के हाथों से बिस्कुट का पैकेट का पैकेट ही अधीरता से पकड़ जेब में ठूँस कमरे के दरवाज़े से बाहर भागते हुए बोली थी, 'मौसी बाहर खेलते-खेलते ही खा लूँगी मैं।' अब अचानक उन बिस्कुटों की याद कर नीरा ने उन्हें जेब से निकाला। खुद भी खाना शुरू किया और शेरू की ओर भी बढ़ाया। पर शेरू तो उसे ही उन बिस्कुटों को बड़े भाई की तरह पुचकार कर अपने पंजों से खिलाने लगा जैसे उसे पता हो कि उन बिस्कुटों की इस समय नीरा को ज़्यादा ज़रूरत है। नीरा अचम्भे में थी कि क्या यह वही शेरू है जो उसे पहले पास ही नहीं फटकने दे रहा था और अब कैसे उसकी ममत्व-भरी-रक्षा कर रहा है।

खेलते-खेलते जब वह घर से काफी दूर निकल आई थी तो शेरू ने उसे कई बार घर वापिस घसीटना चाहा था पर नीरा तो बस आगे-आगे जाने के मूड में थी, उसे तो समय या स्थान का ज्ञान ही नहीं रह गया था। वह तो बस मस्ती में कभी इधर कभी उधर दौड़-फिर रही थी। जब गिलहरी के पीछे दौड़ी और शेरू ने भौंककर उसे भगा दिया तो वह उसका पेड़ पर चढ़ना ताकती रही। इतने में एक तितली पर नज़र पड़ी तो उसके पीछे चल दी। तितली जंगली फूल पर जा बैठी तो फूल देखने चल दी। शेरू वश चलता न देख, पूँछ हिलाता उसके पीछे चल दिया। नीरा प्रकृति की छटा से मोहित, मुग्ध हो जंगल में अनजाने ही काफी अन्दर तक घुसती चली गई थी। उसे तो बस इतना ही ध्यान था कि मौसी का घर कितना अच्छा है....नई आबादी है न....शहर में ऐसी प्यारी जगह कहाँ....।

नीरा को होश तब आया जब अँधेरा गहराने लगा और तब डर हावी होना शुरू हो गया। धुँधलका छा चुका था। दिखना काफी कम हो गया था। नीरा ने इधर-उधर हाथ-पाँव मारे पर अब तक वो पस्त हो चुकी थी। शरीर तो थका था ही साथ ही साथ भय से भी हाथ-पाँव फूलने लगे थे। रास्ता सूझ नहीं रहा था। शेरू ने भी एक-दो बार उसे घसीटने की कोशिश करी, पर वह थक-हार चुकी थी। अतः नीरा एक पेड़ के तने से पीठ सटा सुस्ताने के लिए वहीं बैठ गई। शेरू भी आज्ञाकारी सेवक की तरह उसके पास बैठ गया और तब नीरा ने ठंड से सिहर शेरू को अपने कोट के अन्दर करना चाहा। शेरू ने कोई आपत्ति नहीं की और नीरा के कोट में दुबककर घुस उसके शरीर को अपने फर की ऊष्णता से गर्मी पहुँचाने लगा।

यह जंगल की जगह थी यहाँ ठंडी हवा घात लगाकर हमला करना ज़रूरी नहीं समझती थी। वह यहाँ स्वछन्द घूम रही थी अपना ही इलाका समझ कर। हवा को भी बच्ची पर तरस आया अतः उसने अपनी क्रूर प्रकृति नहीं दिखाई। उस जगह खड़े हुए दरख़्तों ने भी नीरा की असहाय अवस्था को पहचाना। बहुत से पेड़ों ने अपने जीवन-काल में ऐसा हादसा पहले कभी देखा ही न था। हाँ कुछ ने बचपन मे एक बुज़ुर्ग दरख़्त से ऐसा कुछ सुना ज़रूर था। बुज़ुर्ग पेड़ तो कब के जा चुके हैं। बस कुछ ही पेड़ों को उस हादसे की कहानी की बड़ी धुँधलाती-सी याद आ रही थी। पेड़ हवाओं से आवाज़ उधार ले धीरे-धीरे फुसफुसा रहे थे कि किस तरह बच्ची को कम से कम तकलीफ़ हो। वो ऐसे हादसों के आदी तो थे नहीं। पहले तो वो अपने ही में मस्त झूमते-इतराते रहते थे और अब वो कुछ समय से महज़ सामने की बस्ती की इमारतों के मुंडेर कभी-कभार बीच-बीच में ताक लेते थे जहाँ सुबह-शाम यहाँ के पक्षी इधर से उधर और उधर से इधर चहचहाकर उड़ा करते हैं। हाँ आजकल दिन में इंसानों और उनके बनाए तकनीकी यंत्रों की आवाज़ ज़रूर हवा की पालकी में बैठ यहाँ उतर-उतर आती है। आज नई आबादी के इंसानों की एक मासूम-सी बच्ची यहाँ भटक कर उनकी शरण में आ गई है, उसकी रक्षा तो करनी ही पड़ेगी न....

भय, असुरक्षा व साथ ही साथ शेरू द्वारा प्रदत्त ऊष्णता और सुरक्षा के हिंडोले में डोलती नीरा कब नींद के आगोश में पहुँच गई उसे पता ही न चला। नींद भी एक ही समय पर रहमदिल और बेरहम दोनों हो रही थी। जहाँ रहमदिल हो वह नीरा की पलकों में समा गई थी वहीं नमिता की पलकों पर अपनी पदचापों का हल्का-सा बोझ भी नहीं डाल रही थी जबकि उसने सुष्मिता और आशुतोष को कुछ क्षणों के लिए ही सही झपकियों के दामन में लपेट वर्त्तमान की झटपटाहट से राहत दी थी।

नमिता रतजगी आँखों से सुबह की किरणों का उतावली से इन्तज़ार कर रही थी। सुबह की किरणें ही आशा की किरणों से बँधीं थीं। मन ही मन नमिता, सुष्मिता और आशुतोष तीनों ही ईश्वर से प्रार्थना के स्वरों में बुदबुदाए जा रहे थे। इन तीनों के दरमियान शब्दों का आवागमन ज़रूरी नहीं था। वो भावना से भरी, मौन की एक शब्दरहित भाषा में, संवाद कर रहे थे।

आज पहली बार नमिता को महसूस हुआ कि रात इतनी लम्बी भी होती है। रात को सो जाओ और सुबह उठ जाओ....बस....इस बीच क्या इतना बड़ा अन्तराल होता है....लगता था अरे अभी तो सोए हैं अभी से उठने का भी समय हो गया। आज पता चला कि नहीं रात सचमुच लम्बी होती है।

उदास धुन की तरह फैला कुहासा छँटने लगा था। उषा अपनी रक्तिम किरणों से उसे भेद, सतह पर आने के लिए हाथ-पैर मारने लगी थी।

सुबह की कुछ किरणों ने एक साथ मिलकर दरवाज़े के शीशे वाले झरोखों पर दस्तक दी। वो भी शायद एक माँ का दुःख नहीं देख पा रही थीं। अतः दरवाज़े के झरोखों को भेदने में जी-जान से जुट गईं। और उनके अन्दर घुसते ही तीन नज़रों के जोड़े आपस में टकराए। तीनों के शरीर में हरकत हुई, लगा जैसे बेजान खिलौनों में किसी ने चाभी भरनी शुरू कर दी हो। नज़रों में आशा की क्षीण रेखा खिंचनी शुरू हुई। कान हैलीकॉप्टर की गड़गड़ाहट सुनने के लिए बेचैन होने लगे। पुलिस ने कहा था कि दिन चढ़ते ही हैलीकॉप्टर से जंगल की छान-बीन करेंगे।

शेरू का न होना इस बात का साक्षी लग रहा था कि ज़रूर हो न हो वो दोनों जंगल में ही होंगे। अगर कोई और बात होती तो शेरू तो यहाँ होता। अगर अपहरण की बात होती तो शेरू ज़रूर भौंकता। अगर नीरा के साथ कोई ज़बर्दस्ती करता तो शेरू भौंकने के अलावा कुछ और न कर पाने की दशा में ज़रूर ही घर के अन्दर दौड़ता। यदि अपहरणकर्त्ता शेरू को मारता या कुछ खिला-पिलाकर बेहोश करता तो शेरू उस परिस्थिति में भी यहीं होता। अतः यह तो निश्चित दिखने लगा था कि दोनों साथ ही साथ हैं।

अन्त में उन दोनों की जंगल में उपस्थिति ही ज़्यादा सम्भवजनक लग रही थी। तीनों ही हैलीकॉप्टर के आने की आशा में टकटकी बाँधे, बिन बोले भी बहुत कुछ कहते, इन्तज़ार कर रहे थे। कुछ पड़ोसी भी मदद करने कोट, मफ़लर से लस्त उनके दरवाज़े पहुँच गए थे।

हैलीकॉप्टर की आवाज़ से शेरू के कान खड़े हुए। उसने सोई हुई नीरा को चाटना शुरू किया,

जैसे वह उस पर माँ का ममत्व-भरा हाथ फेर उसे उठा रहा हो। नीरा की अधखुली खुमारी से भरी आँखें एकदम से स्थिति का जायज़ा न ले सकीं, पर शेरू के खींचने पर क्षण में ही भरमाई बुद्धि पर असुविधाजनक नींद की खुमारी, दर्द से शरीर का कसमसायापन यकायक सामने आ गया। सिर झटक के उठी। अधखुली आँखें झटके से पूरी खुलीं। शेरू का ममत्वभरा गीलापन अभी भी उसके चेहरे पर अंकित था। नीरा ने भी उसी ममत्व से शेरू पर हाथ फेरा। अब तक शेरू कर्त्तव्य की सतर्कता में प्यार-व्यार की सीमा-रेखा लाँघ चुका था। वो बहुत सतर्क हो कान खड़े कर नीरा को खींचने लगा था मानो अब उसके पास किसी और बात के लिए समय ही नहीं है। अब तो वह बस नीरा को जंगल से घसीटने के चक्कर में था।

अब तक नीरा ने भी हैलीकॉप्टर की आवाज़ सुन ली थी पर फिर भी बाहर निकलने का रास्ता उसे नहीं दिख रहा था। समझ नहीं पा रही थी कि किस दिशा में कदम बढ़ाए। शेरू उसे बाध्यता से खींचने लगा। जानकार बुज़ुर्ग की तरह शेरू उसके कोट के छोर को पकड़े अपने साथ चलने पर बाध्य करता रहा। नीरा भी अपनी इन्द्रियों से ज़्यादा उसकी इन्द्रियों पर, आवाज़ सुनने की क्षमता, सूँघने की शक्ति, धरती का कम्पन पहले से ही जान लेना, ख़तरे से पहले ख़तरे की सम्भावना से चौकन्ना हो जाना आदि महसूस करने की क्षमताओं से प्रभावित थी। सबसे बड़ी बात शेरू ने ही तो सारी रात उसे गर्म व सुरक्षित रखा था। नीरा शेरू की क्षमताओं पर विश्वास कर बिना किसी द्विविधा के उसके पीछे-पीछे हो ली।

आख़िरकार शेरू उसे एक ऐसे खुले समतल स्थान पर ले आया जहाँ से हैलीकॉप्टर ने उन्हें देख लिया। कल रात नीरा के भय के आँसू निकले थे और आज की सुबह आनन्द के आँसू उमड़ पड़े। उसने शेरू को अपने से चिपटा, बार-बार उसे चूम उससे कहने लगी, 'तुम कितने प्यारे हो। तुमने ही मेरी रक्षा की है। तुम तो अति प्रिय अनोखे साथी हो मेरे। चाहे कुछ भी हो मैं तो तुम्हे मौसी से माँग ही लूँगी। अब हम कभी अलग नहीं होंगे।'

शेरू भी दुम हिलाता रहा जैसे सब कुछ समझ रहा हो. . . . 'हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ। तुम्हारे आने पर तुमसे दोस्ती नहीं कर पाया। थोड़ी जलन हुई थी न। तुम्हारे आने पर सबने तो मुझे भुला ही दिया था, बस सब तुम्हीं से प्यार कर रहे थे। इसीलिए कई घंटे जलन के मारे गुस्से से भरा तुम्हें दूर भगाता रहा। पर जब तुमने मेरे दुर्व्यवहार के बावजूद भी बार-बार दोस्ती का हाथ बढ़ाया तो मेरी वो जलन, वो गुस्सा न जाने कब कपूर की तरह धीरे-धीरे उड़ गया और फिर मैं तुम्हारा दोस्त बन गया।'

नीरा हैलीकॉप्टर को नीचे आते देख खुशी से पागल हो शेरू से लिपट गई और बार-बार उसे चूम थैन्क्यू, थैन्क्यू कहने लगी।

शेरू आँखें झपझपा, गर्दन तिरछी कर, नीरा के मुँह से मुँह सटा कुछ इस तरह प्यार से गुर्रा रहा था मानो आगे कह रहा हो कि, 'अरे ! इसमें इतना थैन्क्यू, थैन्क्यू की क्या बात है; स्कूल में पढ़ी हुई कुत्ते की वफ़ादारी की कहानियाँ भूल गईं. . . . कुत्ता तो इन्सान का सबसे वफ़ादार दोस्त होता है, फिर मैं तुम्हारी रक्षा कैसे न करता?'

तुम!

पारुल कनानी

नींद की हथेली पर
एक ख्वाब रख गए थे तुम
या कि मेरी उम्र का
हिसाब रख गए थे तुम!
यूँ भी कुछ नमकीन था
तेरा अनकहा आफरीन था
ख़ामोशी की आह पर
एक किताब लिख गए थे तुम!
हरफ-हरफ जैसे बरस
मैं देर तक जीता गया
जिंदगी के सवाल पर
शायद एक जवाब रख गए थे तुम!
सुलगी तिल्ली रात की
और चाँद जैसे जल उठा
जानता हूँ वो बदरंग हुआ
तो नीला नकाब रख गए थे तुम!

अस्तित्व

उगमसिंह राजपुरोहित 'दिलीप'

पूजा आज पांच साल की हो गई। देखते–देखते कैसे दिन बीत गए पता ही नहीं चला। ऐसा लगता हैं मानों कल की बात हो जब स्वाति शादी करके इस घर में आई थी। फिर एक साल बाद पूजा का जन्म हुआ था। लेकिन इन तमाम सालों में स्वाति ने नरक जैसी जिंदगी बिताई थी। शादी के बाद उसे एहसास हुआ था कि उसका अस्तित्व इस घर में नौकरानी से ज्यादा नहीं हैं। पति माधव सीधे मुंह बात तक नहीं करते थे। पूजा के जन्म के बाद तो और भी चिड़चिड़े हो गए थे। घर वालों को पहली संतान के रूप में पुत्र की आस थी पर पूरी न हो सकी। किसी को कुछ भी पूछती तो घरवाले उसे झिड़क देते। पति के पास जाती तो गालियाँ मिलती।

स्वाति इन तमाम बातों को सोच–सोचकर अपनी किस्मत पर रोती रहती। एक बार हिम्मत जुटाकर सास से बात करने की कोशिश की तो सास ने कहा–'सब ठीक हो जाएगा। इस बार लडका दे दो।' यह सुन धडकन सुन्न रह जाती, तरह–तरह के सवाल मन में आते पर उनका जवाब मौन ही होता। जिंदगी और घर में अजीब–सा आतंक था। कौन कब क्या कह दे! इसी सवाल में न दिन में चैन और ना ही रात में नींद। वो किसी को कहती तो भी क्या कहती। पीहर वालों को बताने से भीतर ही भीतर डरती और घबराती बेवजह वो परेशान होंगे। उसे कुछ भी समझ में नहीं आता। खुद को अपने घर में ही असहाय व लावारिस महसूस करती।

ससुराल–पीहर एक ही शहर में होने के बावजूद भी स्वाति को अपने मायके गए कई महीनें हो गए थे। मां–पापा से फोन पर बात हो जाती। मां बात करते वक्त हर बार पूछती–क्या बात है बेटा...कुछ उदास–सी लग रही हो? पर स्वाति हर बार इस सवाल का जवाब मुस्कुरा कर टाल देती...और कहती ठीक हूं मां। पर उस पगली को क्या पता कि मां अपने बच्चों के दुःख को दूर से ही जान लेती हैं। मां को एहसास हो गया था कि उसकी लाड़ली अन्दर ही अन्दर घुट रही हैं। कोई तो बात है जो उसे भीतर से कुरेद रही हैं। पर क्या! यही सोचते–सोचते उसने स्वाति के पापा से कहा–सुनिए जी! मुझे मेरी सोनपरी की बहुत याद आ रही हैं। उसके ससुराल जाइये और कुछ दिनों के लिए उसे यहां ले आइये। स्वाति के पापा उसे लेने गये। सास से इजाजत ली उसे घर ले जाने की। सास ने कहा–ठीक हैं लेकिन स्वाति बेटा जल्दी आ जाना। तुम तो जानती ही हो इस उम्र में घर का काम कहां हो पाता हैं? पर जैसे–तैसे चार–पांच दिन तक कर लूंगी, हो सके जितना जल्दी आना बेटा।

स्वाति आते ही मां से लिपट कर रो पड़ी। मां ने भी भांप लिया था कि उसकी लाड़ली बहुत परेशान हैं। बता बेटी क्या हुआ...रो मत। मां मुझे ज़ी भर रो लेने दें यह आँसुओं का सैलाब कब से तड़प रहा है बहने को। मां ने उसे आंचल में छुपा लिया और खुद के भी आंसुओ को संभाल न पाई। स्वाति ने अपनी जिंदगी के पन्नों को मां के सामने खोल दिया। उसकी आपबीती सुन मां ने कहा–बेटी औरत की जिंदगी अपने आप में पहेली हैं जिसे वह स्वयं नहीं समझ सकती। उसे वक्त के हवाले कर देने में ही समझदारी है और अवसर देखकर सुधार करना अक्लमंदी। उस रोज पूरी रात वो रोती रही। बार–बार सहेली की बात याद आ रही थी। सरला को उसका पति रोज पीटता था। राघव का यह व्यवहार पीटने से क्या कम था भला। पति अगर मारपीट करें, पत्नी को तवज्जो नहीं दें तो औरत का वह जीवन जीते जी नरक है। उसी तरह राघव भी तो दूरियां बनाए हुए हैं। उसके अपनी जिंदगी के साक्षात् चित्रण आंखों में मंथन हो रहे थे। रात काफी हो चुकी थी पर आंखों में नींद कहां? रात के सन्नाटे में भी वह शोर से लड़ रही थी।

सुबह होते ही स्वाति रसोई में मां के साथ काम में हाथ बटाने लगी। काम खत्म होने के बाद मां–बेटी बतिया रही थीं।

पड़ोस वाले राठौड़ साहब की बेटी टीना भी ससुराल से मायके आई हुई थी। टीना को जब पता चला कि स्वाति आयी हुई है तो वह स्वाति से मिलने चली आयी।

'हेलो' स्वाति! कैसी हो?

ठीक हूं टीना। तुम कैसी हो?

एकदम बढिया। तुम सुनाओ ससुराल के क्या हाल हैं? मैरिज–लाइफ कैसी चल रही हैं? टीना ने सवालों की बौछार–सी कर दी। स्वाति ने स्वयं को संभालते हुए कहा–धीरे यार टीना। धीरे–धीरे पूछो, सांस तो लो। सबकुछ ठीक है, आनन्द–मंगल है।

तुम्हारी परी कैसी है? सुना है बहुत ही सुन्दर गुड़िया है। हां पूजा बहुत ही सलोनी हैं, परी है मेरी बेटी पर.....।

क्या हुआ स्वाति! पर क्या?

कुछ नहीं बस यूं ही।

यूं ही क्या होता हैं? अपनी सहेली से छुपाओगी भला! क्यों क्या बात हैं?

कुछ नहीं टीना।

कुछ तो है तुमें मेरी कसम...अब तो बता दो।

स्वाति सिसकते हुए कहती है कि मेरी पूजा घर में किसी को पसन्द नहीं हैं। उन्हें बेटा चाहिए था, बेटी के लिए उनके खून में ही प्यार नहीं। जब से पूजा का जन्म हुआ हैं, मैं भी उन्हें बोझ लगती हूं। हर दिन, हर क्षण ताने ही ताने। अब करूं भी तो क्या करूं? मेरी किस्मत भी फूटी हुई है। राघव को दो टूक किये अरसा हो गया है। मैं अपने आप में गूंगी–सी हो गयी हूं। किसी को, कुछ भी नहीं कह सकती। कहूं भी तो क्या? यह कि ससुराल दुश्मन हो गया हैं। मेरा वहां अस्तित्व ही नहीं!

टीना ने स्वाति के हाथों को अपने हाथों मे लेते हुए कहा–सुन स्वाति ...धैर्य रख! समय के साथ सब ठीक हो जाएगा। नारी का अस्तित्व, जिंदगी का सबसे बड़ा प्रश्न है। पूजा का ख्याल रख और तुम भी खुश रहा कर। मुस्कुराहट हर गम को भूला देती है। स्वाति ने टीना की बात को मूलमंत्र मान यही सोचा कि जिस प्रकार घड़ी की सूइयों का वजूद उसके चकोरिये में है उसी प्रकार मेरा नाम भी इस आंगन के जुड़ाव से है। इसी सोच के साथ वह अपने ससुराल जाती है।

यूं ही पीहर–ससुराल के बीच रिश्तों को संभालते–संभालते दिन गुजरते गए। चार वर्ष पश्चात् स्वाति ने बेटे को जन्म दिया। उसकी तो समूची दुनिया ही बदल गयी। पति का एकाएक क्रोधपूर्ण व्यवहार, स्नेहपूर्ण आचरण में बदल गया। सास तो इतनी खुश हुई मानों दुनिया का सबसे अनमोल खजाना उसे ही मिल गया हो, जिसे पाकर उसका परिवार दुनिया का सबसे धनी परिवार बन गया हो। ससुराल–मायके वाले जहां खुशियों के सरोवर में अपने को भिगो रहे थे, स्वाति अपने में खोई सोच रही थी–मैंने कितने जतन किये इन लोगों के दिल को जीतने के लिए लेकिन इन्होने हर बार मेरे स्नेह को ठुकरा दिया। पुत्र होते ही मेरे मायने ही बदल दिये। क्या पुत्र के होने से ही स्त्री का स्वाभिमान हैं? नारी का इस घर–आंगन में अपना कोई अधिकार, अस्तित्व ही नहीं हैं?

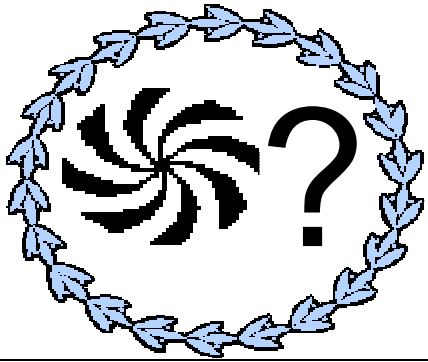

मत मारो

साधना उपाध्याय

मत मारो संतान है मेरी.
माँ को इक जैसे हैं प्यारे
बेटा बेटी सभी दुलारे
खून से सींचा, ममता आँचल
नौ महीने है कोख सम्हारी
मत मारो संतान है मेरी.
नहीं कल्पना है यह कोरी
है इतिहास गवाह सखी री
पर क्या बदल गया इतिहास?
भले आज है बुद्धि विकास.
शिक्षित नर नारी के मन में
बेटा बेटी भेद है जनमे.
बदला नहीं है वो इतिहास
भले आज है बुद्धि विकास.
वंश बढ़ाने वाला बेटा
नाम कमाने वाला बेटा
जब बूढ़े हों माता-पिता तब
पेट भराने वाला बेटा.
ऐसा कुछ नहीं है
पढ़ी-लिखी बेटी भी अब तो
वंशावली में नाम कमाये
करे चाकरी, लाये धन भी
माता पिता का हाथ बंटाये.
लेकिन बेटी फिर भी बेटी
करती है परिवार की हेठी.
चाहे कितनी विद्या दो
चाहे सारे गुण भर दो.

देना होगा खूब दहेज
गर्दन नीची नाक सहेज
इससे उसका मरना अच्छा
युग विज्ञान का रास्ता सच्चा.
माँ के पेट में पता लगाओ
लड़का लड़की भेद है पाओ
दुनिया में मत आने दो
बेटी को ज़हर दे दो.
अगर ख़त्म हो गईं बेटियाँ
बांधेगा फिर कौन रखियाँ?
माँ के बिन क्या होगा सम्भव
जन्म लेंगी नई पीढ़ियाँ?
ओह! सच है बिल्कुल
हमने तो यह सोचा न था
बोलो कैसे इसे सुधारें?
मन चाहे बेटियाँ पधारें.
अगर मारना है तो मारो
उस दहेज दानव को मारो
आँखें खोलीं धन्यवाद
करो प्रसारित यह संवाद.
पढ़ी-लिखी बेटी घर आकर
अपने कुल को करे उजागर.
कर सकती बेटों का काम
देखो तो उसको सिखलाकर.
बदलो मन, धर लो यह ध्यान
बेटा-बेटी एक समान
है बेटा बेटी एक समान.

नारी बलिदानी क्यों!

स्नेह ठाकुर

पौरुष के अहं ने हुंकारा
नारीत्व को
परशुराम के चाप की
टंकार हुई,
हे नारी!
पुरुष है कर्ता-धर्ता
तो फिर तू क्यों
बलिदानी कही गयी?

भरा पड़ा
हर युग का इतिहास
पुरुष के बलिदानों से
राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न,
हरिश्चन्द्र, दधीचि, भीष्म, कर्ण,
गर न भरा हो अभी भी तेरा मन
तो गिनाऊँ और
नाम अनगिनत.

नारी मंद-मंद मुस्कुरा दी
कमल-पंखुड़ी खुली
सरस्वती की वीणा लहरी
वातावरण में लहरा उठी.

प्रिय, न हो इतना उत्तेजित
दिया न मैंने कोई उपालम्भ
ज्वालामुखी के फटने का कारण क्या?
लावा क्यों सब ओर बिखर रहा!

पुरुषत्व का आक्रोश
शान्त होता न देख
सोचा,
धीरज तो केवल
नारी का आभूषण.

बोली विनम्रता का आँचल थाम
वाद-विवाद का चक्कर छोड़
कहती हूँ बस इतना ही
नारी तो अपना सब कुछ ही
कर देती है अर्पित
धरिणी की भाँति.

ले जन्म पिता के वंश में
छोड़ देती है वह उसे
पति के वंश के लिये
अपनी सर्वोत्तम उपलब्धि देने.

हर वंश का नाम
चलता है पुरुषों से
अत: अपनी सृजनात्मकता से
करती है सृजन "राम".

कौसल्या ने ही तो
जन्मे हैं जग में राम!
गिनाये तुमने अनगिनत नाम
बता दो एक भी ऐसा
जो जन्मा हो नारी बिना.

पुत्र चलाता है
पति का वंश
और भेज देती है पुत्री
किसी और का वंश
बढ़ाने के लिए.

स्वयं का तो अस्तित्व रखती नहीं
खाली कर देती है कोख भी
दूसरों के वंशों के लिए
है बचा कुछ और कहने के लिए!
बता दो गर बचा कुछ और कहने के लिए?

हिंदी समाज को वाणी दो

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति महात्मा गाँधी हिन्दी विश्वविद्यालय

'हिंदी' उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, झारखंड और छत्तीसगढ़ के प्रांतों में शिक्षा, सरकारी काम-काज और दैनिक जीवन में आम आदमी द्वारा बोली जाने वाली भाषा है. इसके अतिरिक्त दिल्ली, मुंबई और कोलकाता जैसे महानगरों और गुजरात तथा महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में भी इसे बोलने वालों की काफी बड़ी संख्या है. अन्य अहिंदीभाषी प्रदेशों में भी हिंदी समझने वालों की संख्या अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक है. एक अनुमान के अनुसार लगभग ४१ प्रतिशत भारतवासी हिंदी बोलते हैं. यदि इसकी सह भाषाएँ जैसे भोजपुरी मैथिली, अवधी और ब्रज आदि को भी साथ में जोड़ लें तो यह संख्या और बढ़ जाती है. हिंदी का रचनात्मक साहित्य समृद्ध और वैविध्यपूर्ण है. उसमें निरंतर प्रयोग होते रहे हैं और उसका निरंतर विकास हो रहा है. संचार तथा फिल्म के क्षेत्र में हिंदी का तीव्र गति से विस्तार हुआ है. हिंदी में पत्रिकाओं, अखबार तथा पुस्तकों का प्रकाशन बढ़ रहा है. हिंदी ने देश और समाज की अस्मिता, सांस्कृतिक विरासत और देशज ज्ञान परंपरा को भी समृद्ध किया है. कबीर, तुलसी, सूरदास, प्रेमचंद और निराला जैसे अनेकानेक हिंदी रचनाकारों ने हमें सांस्कृतिक रूप से संपन्न बनाया है. इसके बावजूद आज हिंदी का प्रभावी उपयोग संतोषजनक स्थिति में नहीं है. हिंदी माध्यम के छात्र-छात्राओं को तुलनात्मक दृष्टि से हम ज्ञान और कौशल के क्षेत्रों में दुर्बल पाते हैं. इसके चलते उन्हें रोजगार पाने के लिए कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में उनकी सफलता सीमित रहती है. इसका परिणाम कुंठा और तनाव तो होता ही है, लेकिन उससे ज्यादा चिंताजनक यह है कि मानव संसाधन का एक बड़ा हिस्सा निष्क्रिय और अनुत्पादी बना रहता है और उसके लाभ से समाज वंचित रह जाता है. ऐसी स्थिति में यह एक राष्ट्रीय चुनौती हो जाती है कि हम इस तरह के हिंदी भाषी मानव संसाधन को कैसे समर्थ बनाएँ.

हम भाषा में जीते हैं और भाषा की शक्ति हमारे जीवन में उस भाषा के उपयोग पर निर्भर करती है. भारत में अंग्रेजी के लंबे औपनिवेशिक शासन ने भारतीय भाषाओं को हाशिए पर ढकेल दिया और एक प्रकार के गहरे सांस्कृतिक विस्मरण की प्रक्रिया को जन्म दिया जिसके कारण भारतवासी भारत से या कहें अपने आप से दूर होते चले गए. यह हस्तक्षेप इतना खतरनाक सिद्ध हुआ कि हमारी अपनी पहचान को लेकर हमारे मन में संशय घेरने लगा. हम दूसरों द्वारा दी गई पहचान को अपनी पहचान मानने लगे और दूसरे के दिए मानकों को वैज्ञानिक और तटस्थ मान कर उनकी सहायता से अपने आप को आँकने लगे. उसकी विचार-कोटियाँ भारतीय विचारों की उपयुक्तता और प्रासंगिकता को सिरे से खारिज कर देती हैं. इस प्रकार की नीति के चलते केवल भाषा की ही उपेक्षा नहीं हुई, बल्कि भारत के समस्त देशज ज्ञान, कला, साहित्य और प्रौद्योगिकी को ही हम हेठी निगाह से देखने लगे. उसके साथ हमारा सीधा रिश्ता धीरे-धीरे कमजोर होता चला गया. आज स्थिति यह हो गई है कि इस

तरह के ज्ञान के लिए हमें विदेशों का मुँह जोहना पड़ रहा है और भारत-विद्या के विभिन्न पक्षों के विशेषज्ञ अब हमें भारत के बाहर मिलते हैं.

किसी समाज से उसकी अपनी भाषा छीन लेने का सीधा मतलब होता है उसे गूँगा बना देना और अभिव्यक्ति से महरूम कर देना. ऐसे में व्यक्ति की अपनी पहचान जाती रहती है. विदेशी शासकों ने एक पराई भाषा को महत्व देकर पूरे भारतीय समाज को प्रतिमानविरुद्ध ठहरा कर कटघरे में खड़ा कर दिया और अपने आपको गलत मानने के लिए मजबूर कर दिया. उन्होंने समाज को न केवल एक अनुवादी मानस बनने के एक नए और अंतहीन काम में जोत दिया, बल्कि मन में एक आत्मसंशय और ग्लानि को भी जन्म दिया. इस स्थिति ने सामाजिक जीवन में पराधीनता को बढ़ाया और एक समृद्ध संस्कृति वाले समाज को नए समीकरण में 'पिछड़ा' घोषित कर दिया. आज भी हिंदी समाज का एक बड़ा हिस्सा इस हीन भावना से उबर नहीं सका है, पर स्वतंत्र भारत के प्रजातांत्रिक परिप्रेक्ष्य में अंग्रेजी का उपयोग एक हद तक सहजता के बदले बनावटीपन और देश हित के बदले निजी स्वार्थ साधने का जरिया बनता गया. न्याय आम आदमी की पहुँच से दूर और महँगा होता गया और पुलिस जैसे सरकारी तंत्र के महकमे डरावने और उलझाऊ हो कर शोषक की भूमिका अपनाते गए. एक विदेशी भाषा को जीवन के केंद्र में ला कर हमने शासक और शासित का नया वर्ग खड़ा कर दिया.

प्रजातंत्र की सफलता के लिए समाज की भाषा को समर्थ बनाया जाना आवश्यक है ताकि समझने, निर्णय लेने और काम करने में सुभीता हो. तभी शिक्षा, स्वास्थ्य, कोर्ट कचहरी, सरकारी कार्यालय तथा बाजार आदि के विभिन्न उपक्रमों में हिंदी के अधिकाधिक उपयोग से ही सत्ता का विकेंद्रीकरण हो सकेगा और जनता की शासन में भागीदारी बढ़ सकेगी. हिंदी भाषी समाज, विशेषतः युवा वर्ग को आधे-अधूरे मन से किए गए सरकारी प्रयास के कारण आज हिंदी में ज्ञान, कौशल और प्रौद्योगिकी के स्तरीय संसाधनों और आवश्यक प्रशिक्षण की बेहद कमी है. सरकारी संस्थान जैसे केंद्रीय हिंदी संस्थान, केंद्रीय हिंदी निदेशालय और तकनीकी शब्दावली आयोग तथा विभिन्न राज्यों में गठित हिंदी ग्रंथ अकादमियों ने विगत वर्षों में हिंदी के लिए कार्य किया है, पर अपेक्षित तालमेल की कमी और संकुचित दृष्टि के कारण सीमित उपलब्धियाँ ही हो सकी हैं. इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक हिंदी संसाधन केंद्र स्थापित करने की आश्यकता है जो न केवल हिंदी भाषा साहित्य के अध्ययन अध्यापन को गुणवता दे, बल्कि हिंदी माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न अनुशासनों के मानक प्रस्तुत करे. यह केंद्र हिंदी को और उसके माध्यम से हिंदी भाषी समाज को सशक्त बनाने के लिए अपेक्षित तकनीकी संसाधन उपलब्ध कराने, स्तरीय अध्ययन सामग्री तैयार करने, अनुवाद की प्रौद्योगिकी तथा हिंदी के अध्यापन की उन्नत प्रविधि आदि की दिशा में योजनाबद्ध ढंग से कार्य करे तो अच्छे परिणाम मिल सकते हैं. वर्धा स्थित महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय ने इस दिशा में पहल की है. इसके प्रयासों को संबंर्धित कर राष्ट्रीय हिंदी संसाधन केंद्र को साकार किया जा सकता है.

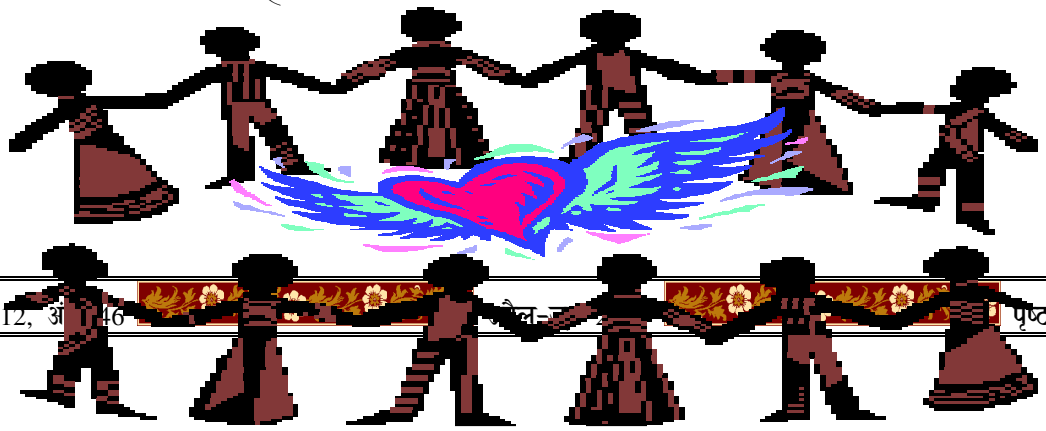

विध्वंस का विकास

राम सिंह यादव

एक बहुत विशाल ऊर्जा का विस्फोट हुआ, सारे ब्रह्मांड में असंख्य तारे और ग्रह टूट कर छितरा गये। लेकिन ऊर्जा खत्म नहीं हुई वरन ब्रह्मांड की एक एक संरचना में समाहित हो गयी और धीरे धीरे सूर्यों एवं ग्रहों की उत्पत्ति प्रशस्त हुई।

इन्हीं में एक अपनी पृथ्वी और सूर्य भी थे. सूर्य ने पिता भाव से और माँ पृथ्वी ने अपनी कोख से सृष्टि को जन्म देना आरंभ किया। अरबों सालों तक दोनों रात-दिन मेहनत करते रहे। पिता सूर्य नाभिकीय संलयन से ऊर्जा को केन्द्रित करता और माँ को देता फिर माँ उस ऊर्जा को अपने बच्चों में बाँट देती, माँ पानी लायी और जीवन को सींचना शुरू किया। साइनोबैक्टेरिया, शैवाल, कवक और छोटे छोटे जीवों से जीवन का आधार बना। लेकिन माँ और पिता अभी भी सतत प्रयास कर रहे थे फिर पेड़, पौधे, जीव, जंतु, खनिजों, धातुओं का ताना बाना बुनता चला गया। आखिरकार दोनों ने अपनी सबसे शानदार और अतुलनीय औलाद "इंसान" को पैदा किया। माँ-बाप फूले न समाये क्योंकि सिर्फ यही एक रचना थी अब तक के खरबों सालों के परिणामस्वरूप जिसमें वो सातों इन्द्रियों को एक स्वरूप में जोड़ सके थे और ये सात इन्द्रियाँ थीं - देखना, सुनना, सूंघना, छूना, बोलना/स्वाद लेना, आभास करना और चलायमान होना।

जिस तरह पहाड़ की चोटी पर पहुँचने पर आत्मसंतुष्टि मिलती है और अथक परिश्रम तथा गिनते हुए दिनों का अंत हो जाता है, लेकिन ठीक उसके दूसरी तरफ एक गहरी ढाल भी दिखती है जिसकी ऊंचाई से गिरते वक़्त न तो परिश्रम की आवश्यकता होती है और न समय का एहसास होता है। अब सवाल ये आता है की पहाड़ की चोटी पर जाने को कहा किसने था जबकि दूसरी तरफ गिरने का खौफ था?

ऊर्जा और स्थूलता का खेल बड़ा निराला है, निरंतर परिवर्तन है। धुआँ हमेशा ऊपर ही उठता है और राख़ नीचे ही गिरती है। पौधा जन्म लेते ही ऊपर को उठता है और जड़ जमीन से चिपकती है। मस्तिष्क ऊपर ही क्यों स्थित है। युगों-युगों से यही सवाल और इसका जवाब ढूँढता मानव खोज़ पर खोज़ करता जाता है. मन में छुपी अनंत ऊंचाई की अभिलाषा लिए अर्थात यही अभिलाषा उसको ऊपर खींचती है।

क्या है अणु जहां इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन नृत्य करते हैं। फिर हिग्स बोसॉन अपनी झलक दिखा कर गायब हो जाता है, दसियों हज़ार श्लोक ऋग्वेद और यजुर्वेद में ऋषि बता जाते हैं। फोटोसिंथेसिस, रेस्पिरेशन, बिजली कौंधने और उससे जीवन विकास, सप्तरंग, अंग प्रत्यारोपण, दधीचि मुनि को अश्व का सिर लगाना, वायु गमन, अंतर्ध्यान, दूरदर्शन, टाइम मशीन, तंत्र साधना, सम्मोहन विज्ञान, मानसिक साधना, सात चक्रों की साधना का सिद्धान्त जैसे जाने कितने अकल्पनीय विज्ञान का प्रतिपादन करते रहे।

कृष्ण बहुत करीब पहुँच गए इस ब्रह्मांड के नियम को ढूंढते ढूंढते और आत्मा का विकास और विनाश समझाया, उन्होने बताया की किस तरह अणु एक तरफ जीवन और जन्म की प्रक्रिया में लगे रहते हैं तथा दूसरी तरफ उनका विनाश और मृत्यु भी निरंतर होती रहती है, कितनी आसान भाषा में वो उस आत्मा अथवा ऊर्जा को एक-एक कण या जीव में दिखा देते हैं। अद्भुत विज्ञान दिखता है पुरातन इतिहास में कुबेर का वायुयान, लंका व भारत के बीच आदम-पुल, श्रीलंका का स्वर्ण आभा से जगमगाता शहर, शरीर को हल्का कर हवा मे उड़ने वाले हनुमान का विज्ञान, मैटर डिसप्लेसमेंट द्वारा पदार्थ में ऊर्जा के प्रवाह को नियंत्रित कर शरीरों का स्थानांतरण, कहानियों सा लगता है ना? शायद कृष्ण इस पर शोध करते हुए बहुत आगे चले गए थे और आध्यात्मिकता के सूत्र को मानवता में पिरो कर जन्म और मृत्यु के बंधनों से परे जाने की शिक्षा देने लगे।

इतनी सटीक और आध्य शिक्षा देने के बाद भी उनके श्लोकों में स्वयं की खोज करने की ही शिक्षा मिलती है। उन्होने ब्रह्मांड के प्रत्येक पदार्थ का मानवीकरण करते हुए आत्मविकास की प्रेरणा दी और मानव को भी पदार्थ का ढांचा बता डाला।

पुरातन वेद या गीता की सबसे खास बात ये थी की इनमे कहीं भी किसी धर्म का जिक्र नहीं था बल्कि सिर्फ विज्ञान था। महाभारत काल में इस विज्ञान की पराकाष्ठा दिखती है, चाहे वो संजय की दिव्यदृष्टि का दूरदर्शन हो, कृष्ण का अध्यात्म और पदार्थ के तत्व एवं उसका आत्मा से संबंध का सिद्धान्त हो, अभिमन्यु के द्वारा गर्भ में ही शिक्षा ग्रहण की कथा हो या जंगल में रहने वाले अद्वितीय योगी शिव का 'आ'-'उ'-'म' और सृष्टि के साथ मानव का जुड़ाव था।

लेकिन चोटी के दूसरी तरफ तीव्र ढलान का प्रतिविम्ब महाभारत में अश्वत्थामा द्वारा परमाणु बम सरीखे ब्रह्मास्त्र के प्रयोग में आ जाता है। द्वारिका डूब जाती है, सरस्वती नदी का विलोप हो जाता है, वनस्पति, मनुष्य व जीवों का व्यापक संहार होता है, पहले कभी न वर्णित होने वाला थार मरुस्थल साकार होने लगता है और जेनेटिक डिसार्डर की कल्पना सत्य हो जाती है।

इस काल के बाद नागरीय सभ्यता या संभवतः सिंधु सभ्यता विलुप्त हो जाती है और ५००० ई०पू० से लगभग २००० ई०पू० का इतिहास अंधकार में डूब जाता है। तीन हज़ार साल पहले जंगलों में छिपा सहमा मानव फिर बाहर निकला लेकिन अब तक वो रूढ़ियों, अंधविश्वासों, कर्मकांडों, भगवान से डरा हुआ और विज्ञान हीन हो चुका था। सृष्टि ने फिर से मनुष्य को मौका दिया पनपने का, सृष्टि जीवित थी चूंकि मानव ने अब तक सृष्टि के साथ खिलवाड़ नहीं किया था वो जंगलों, अणुओं की स्थिरता और अध्यात्म को भौतिकता से बहुत दूर रखे हुए था। भारत की भौगोलिक स्थिति ने मानव को जीवन जीने के लिए सबसे सरल व्यवस्था कर रखी थी. ऋतु चक्र, नदियां और उपजाऊ मैदान मानव को आत्म खोज करने के लिए प्रेरित करता रहा और काल दर काल यहाँ का वैज्ञानिक साधु आत्मविद्या के साथ प्राकृतिक जीवन को पोषण देता रहा जिसका जिक्र सिवाय भारत के, विश्व के किसी अन्य इतिहास में नहीं मिलता और यही वजह है कि आज भी वो साधु या फकीर के रूप में भारत के जंगलों में अध्यात्म की ऊंचाइयां साधते मिल जाते हैं - विलक्षण श्रेणी मानवों की। पुरातन काल से मध्यपूर्व एशिया का ये भाग सम्पूर्ण विश्व के लिए कौतूहल रहा, विश्व के हर कोने से इंसान यहां आता रहा और बसता चला गया। अद्भुत सम्मिश्रण है इस धरा पर मानव और प्रकृति का।

कितना अच्छा होता की इस जीवन और धरा का हम सदुपयोग कर पाते।

आज का विश्व अलग है, ये विश्व है भौतिकवाद का. भारत जो कभी सूक्ष्म ऊर्जा के स्थानांतरण के सिद्धान्त को प्रयोग करता था वो भी अब भौतिक और स्थूल ऊर्जा के स्थानांतरण के पथ पर अग्रसर हो चुका है। आज सम्पूर्ण विश्व में पदार्थों में निहित ऊर्जा से मानव अपनी जरूरतों को पूरा करने की होड़ में लगा है. खनिज जिन्हें सृष्टि ने भूगर्भ में दबाया क्योंकि वो कार्बन तथा हानिकारक यौगिकों का संकलन है और मानव या जीवित प्राणियों के लिए हानिकारक है. वस्तुतः आज विश्व इनसे उत्पन्न कुप्रभावों का प्रत्यक्ष सामना कर रहा है।

भौतिक संसाधनों का अंध उपभोग और निर्भरता मानव अस्तित्व को अपने अंत की ओर धकेल चुका है। ब्रह्मांड के शाश्वत नियम – "ऊर्जा न नष्ट होती है और न ही उत्पन्न होती है" में आज की स्थिति का पूरा वर्णन है. हम लोग खनिजों को जमीन खोखला कर बाहर निकालते हैं जिससे वो जगह खाली हो जाती है अब उस खाली जगह को भरने के लिए ऊर्जा विस्थापन होता है. चूंकि यहाँ से निकला पदार्थ सतह पर पहुँच चुका होता है तो वहाँ से ऊर्जा को हटाएगा ही. फलस्वरूप भूस्खलन व चक्रवात संबन्धित घटनाएं बढ़ती हैं। गैस, तेल, कोयला जैसे पारंपरिक व खनिज ऊर्जा स्त्रोत जब जलते हैं तो हानिकारक गैसें, धूल, धुआँ इत्यादि के रूप में वातावरण में छा जाते हैं। चूंकि पिता सूर्य की जीवनदायिनी किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं और आवश्यकतानुसार ऊष्मा अवशोषित करने के बाद पृथ्वी उन किरणों को परावर्तित कर देती है. लेकिन जब जमीन में दबे खनिजों को सतह पर लाकर उनका प्रसंस्करण किया गया और इतनी तेज़ी से पृथ्वी अपने मैकेनिज़्म मे बदलाव नहीं कर सकी तो वातावरण से किरणें परावर्तन मे परेशानी होने लगी जिससे ऊष्मा का एक बड़ा भाग पृथ्वी की सतह पर ठहरने लगा, इसके प्रभाव से ध्रुवों पर जमी अथाह बर्फ पिघलना शुरू हो चुकी है साथ ही साथ पारिस्थितिक असंतुलन का एक ऐसा दौर शुरू हो रहा है जिसकी भरपाई मानव प्रजाति कभी नहीं कर पायेगी । प्रकृति को जीवन अनुकूल बनाने के लिए फिर से लाखों सालों के इतिहास को दोहराना पड़ेगा।

* ऊष्मा के संरक्षण से वाष्पीकरण बढ़ेगा, वर्षा अवधि लंबी हो जाएगी, ऋतु चक्र परिवर्तित हो जाएगा, कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, वातावरण विरल हो जाएगा, चक्रवातों-तूफानों-सुनामी तथा भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं से मानव अपनी ही बनाई इमारतों में दफन होगा।
* महामारियाँ मानव का ग्रास करेंगी; नयी नयी बीमारियां उत्पन्न होंगी, विषाणु व जीवाणुओं के डी०एन०ए० में परिवर्तन होगा जिससे वो हमारी दवाओं के विरुद्ध अधिक शक्तिशाली हो जाएँगे।
* खाद्य श्रृंखला टूटेगी, जीव भूख से तड़प तड़प कर जान देंगे, मानव भी भूखा शीत मृत्यु की शैय्या में पड़ा होगा। मानवीय अपराधों में असीमित बढ़ोतरी होगी।
* सर्दियों की अवधि बढ़ जाएगी; मैदानी इलाके भी बर्फ से पट जाएँगे उसके बाद अचानक लंबी गर्मी और भयंकर बारिशों से चट्टानी संरचनाओं का क्षरण व मृदा का अपरदन बढ़ेगा।
* छद्म ऊर्जा के स्त्रोत भी काम करना बंद कर देंगे।

* सबसे पहले पर्वतीय व तटीय इलाकों का विनाश होग, उसके बाद शहरों का नाश होगा क्योंकि वहाँ का निवासी पूरी तरह से पराधीन है, पेट भरने के लिए वो गाँवों के खेतों से आ रहे अनाज तथा सब्जियों पर निर्भर है।
* शहरों में पानी अत्यधिक गहराई पर पहुँच चुका है जिसे बिना बिजली के पाया नहीं जा सकता और नदियों, तालाबों या झीलों का पानी इतना प्रदूषित हो चुका है कि पानी न कह कर जहर ही कहा जाने लगा है ।

विकास की अंध भक्ति मे डूबे शहर, सत्तासीन, नवीन व व्यावसायिक मानव कातर दृष्टि से अपने इष्टों के प्राण आहुति के साक्षी बनेंगे। आज की गई भूल या अनदेखी उस वक़्त काल नजर आ रही होगी।

वर्तमान की एक छोटी गलती विश्व को किस मोड़ पर खड़ा करेगी उसका अंदाज़ लगाना कठिन है जिस प्रकार सिर्फ दो लोगों की क्षुद्र सत्ता भूख ने भारत और पाकिस्तान का विभाजन कराया और आज दोनों देशों को २५० से ज्यादा परमाणु बम दे दिये। आखिर कौन सी दूरदृष्टि थी इनकी, जिसने उनके ही डेढ़ अरब वंशजों को नष्ट करने की राह पर ला खड़ा किया? इसी प्रकार उत्तर कोरिया-दक्षिण कोरिया, फिलिस्तीन-इज़राइल, इराक़-ईरान, चीन-जापान, अमेरिका-रूस, सीरिया, लीबिया, अफगानिस्तान, विएतनाम, यूक्रेन, केन्या, नाइजीरिया इत्यादि किस संतुष्टि के लिए उलझते हैं? वो किससे लड़ना चाहते हैं? वो किसको तबाह करना चाहते हैं? इसका अंजाम क्या होगा?

चाहे पारिस्थितिक असंतुलन हो, धर्मांधता हो, सत्ता संघर्ष हो, सीमाओं में बंधते देश हों या परमाणवीय विनाश का सृष्टि के ऊपर मँडराता खतरा हो. मानव अपने लोभ की वेदी पर विलुप्त होने की कगार पर है।

पृथ्वी का कुछ नहीं बिगड़ेगा वो अपनी संरचना में परिवर्तन कर लेगी, ऊर्जा फिर से बटेगी जीव में, जीवन का फिर से विकास होगा परंतु सृष्टि का सबसे उत्कृष्ट जीव – मानव समाप्त हो जाएगा।

लेकिन शायद मानव अभी भी बच सकता है। ऊर्जा के दो पहलू होते हैं सकारात्मक और नकारात्मक. उसी प्रकार मानव मन में भी सदैव द्वंद चलता रहता है. एक तरफ प्रेम, सौहार्द, वात्सल्य, बंधुत्व, सामाजिकता और नैतिकता का भाव है तो दूसरी तरफ अनीति, कठोरता, घृणा, प्रतिकार, संकीर्णता, निर्दयी क्रूरता का विम्ब है। सभी जीव दोनों पक्षों के वाहक हैं लेकिन सिर्फ मानव ही इन दोनों मे भेद कर सकता है और शांत भाव से आने वाले भविष्य के लिये क्या उचित है उसका विश्लेषण कर सकता है। सम्पूर्ण मानवता दांव पर लगी हुई है और शायद ही ऐसा कोई मानव होगा जो अपनी पीढ़ियों के प्रति चिंतित न हो? कट्टर से कट्टर व्यक्ति का भी कलेजा रो पड़ता है अगर अनजाने से भी किसी अबोध बालक का खून से सना शव देख ले। अनैतिकता व घृणा सिर्फ दूसरों के सामने स्वयं की उत्कृष्टता को साबित करने का मात्र दिखावा होती है जबकि वो कठोर व्यक्ति भी एकांत में प्रेम और वात्सल्य की मूर्ति होता है।

हे मानव अपनी ऊर्जाओं को पहचान। अपने जन्म के प्रयोजन की खोज कर लेकिन भौतिकता से सृष्टि का विनाश मत कर । जीवन जीने की न्यून आवश्यकताएँ और सृष्टि द्वारा उनकी आपूर्ति को समझ।

बहुत संभव है कि अधिकतर लोग इस लेख को विकासविरोधी समझेंगे परंतु इस संदर्भ मे उनसे

सिर्फ एक ही सवाल है की सांस लेने योग्य वायु न हो, सूखे कंठ को पानी न हो और तुम्हारी संतान तुम्हारा कपड़ा पकड़कर भूख से बिलख रही हो, उस वक़्त तुम किस विकास के पक्षधर होगे? याद रखो केदारनाथ त्रासदी में आदमी लाखों रुपयों में एक–एक पानी की बोतल खरीद रहा था. फिलीपींस का हैयान तूफान, ब्रिटेन की प्रलयंकारी बाढ़, जापान की सुनामी और अमेरिका का पोलर वोर्टेक्स अथवा शीत चक्रवात के रूप मे टनों बर्फ विकास नहीं विनाश की आहट है।

मानव को अपने जीवन को बचाने के लिए स्वयं के संकल्प और क्रियान्वयन की आवश्यकता है न कि किसी राजनीतिक इच्छाशक्ति या बाह्य सहायता का इंतजार। राजनीति तथा व्यवसाय सिर्फ दंभ व स्वार्थ की प्रतिपूर्ति करते हैं। स्वविनाश के लक्ष्य की ओर उन्मुख राजनीतिज्ञों, वेद में इंद्र को पुरंदर कहा गया है जो मानसृजित इमारतों, बांधों को नष्ट करता था, जो वणिकों के व्यवसाय का विरोधी था तथा जंगलों में आत्मविद्या की साधना करने वाले साधुओं की रक्षा करता था, जो वास्तव में प्रकृति संरक्षक था। ये था हमारा भारत जिसे जंगलों और प्रकृति के सान्निध्य में असंख्य साधुओं-सन्यासियों द्वारा अनवरत खोज करके लिखा गया है. अत्यधिक नूतन विज्ञान चिरकाल से भारत के जंगलों में पोषण पाता रहा है।

झूठे विकास की तरफ मत भटको, अपने भारत को बचा लो। कुछ कठोर और असहज समाधान हैं जिन्हें करना शायद आपके वश में न होगा परंतु मृत्यु की हकीकत का सामना, बच्चों और ईष्ट जनों का करूण चेहरा आपकी प्रेरणा बनेगा।

सबसे पहले ज़मीनों की खरीद फरोख्त का व्यवसाय एकदम बंद करें तथा अल्प जरूरत के मुताबिक ही जमीन में कंक्रीट बिछायेँ।

हर घर में छोटी बगिया बनाएँ जिसमे लौकी, कद्दू जैसी बेल वाली सब्जियाँ या फिर भिंडी इत्यादि जरूरत भर की सब्जियाँ उगा सकें।

घरों को जमीन से 1-2 फुट ऊंचाई पर बनाएँ तथा उसके नीचे साफ पानी (वर्षा जल) जमा करने का उपाय करें। नालियों व नालों में बालू, मौरंग और बजरी की परत डालें जिसके घर्षण से पानी साफ होता रहे तथा सिल्ट की समस्या से बचने के साथ ही जमीन पानी भी सोखती रह सके, नालियाँ ऊर्ध्व “एल”/बंध आकार की बनाएँ जो पानी को देर तक जमीन पर रोक सकें।

घरों में भी कीटनाशकों का प्रयोग कम कर दें और यदि करें भी तो उसका प्रवाह कम करें।

साबुन, लोशनों, डिटर्जेंट का इस्तेमाल कम करें, इनसे मिश्रित पानी नालियों, तालाबों, नदियों व सतही पानी को बर्बाद कर देता है और उसमे मौजूद जैविक श्रृंखला की मृत्यु का कारण बनता है. यह पानी किसी के उपयोग के लायक नहीं रह जाता, इससे बदबू, जहरीलापन, मच्छरों और महामारियों का जन्म होता है।

नदियों में किसी भी प्रकार का कचड़ा या मूर्तियों का विसर्जन न करें, यह अवैज्ञानिक है और न ही वेदों मे वर्णित है।

तालाबों को पुनर्जीवित करें, उनका अतिक्रमण न करें और न ही कचरा डालने का साधन समझें। इनका हमारे जीवन व कृषि में अप्रतिम योगदान है, जिसकी वास्तविकता समझें. जमीन के नीचे

का पानी जहरीले खनिजों व लवणों से युक्त होता है इसीलिए सृष्टि ने इस पानी को मानव की पहुँच से दूर रखा था, पीने योग्य पानी सतत बहता हुआ और ऊपरी परत का ही होता है. गुरुत्वाकर्षण द्वारा खीचें गए खनिजों से भरा जमीन का भीतरी पानी कैंसर, पथरी, हेपाटाइटिस जैसी जानलेवा बीमारियों का जनक है। हम लोगों द्वारा सतह का पानी बर्बाद किया जा चुका है लेकिन यह हम सबके सघन प्रयास से मात्र २-५ साल की बारिश से फिर से प्राप्त किया जा सकता है।

तालाबों व नदियों के किनारे वनों व छोटे पौधों को रोपित करें तथा वहाँ से निर्माणों को हटाएँ, लगभग ५०-१०० घरों के आस पास एक तालाब होना नितांत आवश्यक है। अपनी नदियों तथा तालाबों को स्वच्छ करें।

जमीन का अतिक्रमण रोकें, खाली पड़ी फैक्ट्रियों और उनकी ज़मीनों का नयी फैक्ट्रियों तथा आवासों के लिए उपयोग किया जाये।

शहरों में मकानों को आवंटित किया जाये न की बेचा जाये जिससे अमूल्य भूमि का खेती व स्वनिर्भरता के लिए सदुपयोग हो सके साथ ही साथ पैतृक मकान के साथ पीढ़ियों का जुड़ाव रह सके।

शहरों में न तो सड़कों की कमी है और न ही आदमियों की अनियंत्रित भीड़, बल्कि कारों, बाइकों व ट्रकों का जाम है, इनके ऋण की व्यवस्था को सीमित किया जाये तथा उपयोग को हतोत्साहित किया जाये।

पब्लिक ट्रांसपोर्ट को सरकार बढ़ावा दे, साइक्लिंग, कार पूलिंग, टैंपो, बसों का उपयोग गौण न समझें बल्कि भविष्य के लिये ऊर्जा का संरक्षण करें।

प्लास्टिक, काँच, पेपर, तथा आर्गेनिक कचरों को घरों से ही अलग अलग करके उचित निस्तारण करें, अन्न का उपयोग सीमित व जरूरत के आधार पर करें उसका एक दाना भी बर्बाद न करें। जाने कितने भूखे पेट उस दाने का इंतज़ार कर रहे हैं।

पारिस्थितिक तंत्र के अनुसार नैसर्गिक पौधों व वृक्षों को बढ़ावा दें. सजावटी, प्रसंस्कृत पेड़ पौधे जैव विविधता प्रभावित करते हैं और जलवायु व सामाजिक विकृति लाते हैं।

परमाणु बमों व सृष्टि को नष्ट करने वाले पदार्थों के घटकों का अध्ययन कर उनको उन्हीं जगहों पर नष्ट किया जाये जहां से उन्हे निकाला गया था। सृष्टि के अपने तंत्र में इनका निस्तारण करने की प्रक्रिया वहीं मौजूद होती है जहां वो यौगिक पाये जाते हैं।

ऊर्जा व अन्य साधनों का सीमित प्रयोग करें तथा धीरे धीरे उनपर निर्भरता कम करें, जिससे आने वाले समय में जब इनकी कमी हो जाये तब भी हम जीवित रह सकें।

अतिवादी संस्कृति की पराकाष्ठा मे निहित विनाश का अपने हर कदम पर चिंतन करें, अपने मस्तिष्क के सकारात्मक पहलू को उजागर करें।

पश्चिमी विकास के पक्षधर मेरे दोस्तों जरा विश्लेषण करो उस दशा की जब सीमित ऊर्जा का स्त्रोत खत्म हो जाएगा तब ऊर्जा के अभाव में न बिजली होगी और न ट्रांसपोर्ट के साधन काम कर रहे होंगे उस वक़्त गहरी जमीन में दबा पानी कैसे निकालोगे, नदियों-तालाबों – झीलों का वैसे भी नामोनिशान मिटा चुके होगे, पेट भरने के लिए पौधे, सब्जियाँ या घास पत्ते कहाँ से पाओगे अपनी कंक्रीट या बंजर हो चुकी जमीन पर? भूख और प्यास से तड़पते वक़्त न तुम्हें नैतिकता का ख्याल रहेगा और न समाज का डर लगेगा। राष्ट्र, अनुशासन, राजनीति, प्रांत, धर्म, भाषा, शिक्षा, प्रवचन, संस्कार,

वर्ण, सिद्धान्त, पैसा, कहाँ से पाओगे अपनी कंक्रीट या बंजर हो चुकी जमीन पर? भूख और प्यास से तड़पते वक़्त न तुम्हें नैतिकता का ख्याल रहेगा और न समाज का डर लगेगा। राष्ट्र, अनुशासन, राजनीति, प्रांत, धर्म, भाषा, शिक्षा, प्रवचन, संस्कार, वर्ण, सिद्धान्त, पैसा, बिल्डिंगें, पुल, विकास जैसे असंख्य शब्दों का अस्तित्व खत्म हो जाता है पेट के आगे। महंगाई अपने चरम पर होगी और भूखा मानव हर अपराध करने पर विवश होगा क्योंकि भूख से अपराध का सीधा रिश्ता है।

हे महामानवों स्वार्थ, वैमनस्य, विकास में छुपे विनाश और वर्तमान की राजनीति मत करो, बल्कि भविष्य की राजनीति करो।

याद करो तुम भारत के जंगलों से निकले हुए वो मानव हो जिन्हें इस ब्रह्मांड की सबसे सरल जलवायु व जीवन मिला है। लौट आओ अपने जंगलों की ओर, और फिर से नष्ट होती प्रकृति तथा मानव संतति को उज्जवल भविष्य दो। तुम संसार के अग्रज हो जहां माँ का सम्मान था, जहां नारी पुरुष का आधार थी, जहां सीताराम, राधेश्याम या गौरीशंकर जैसे शब्दों का अस्तित्व था। जहां विश्व की सबसे उन्नत चिकित्सा व्यवस्था थी। जहां आर्यभट्ट जैसे मानव ने हजारों साल पहले ही पृथ्वी की गोलाई, नक्षत्रों, सूर्य की दूरी, सौर मण्डल, पाई इत्यादि जान लिए थे। जहां स्त्री स्वयंवर मे खुद वर चुनती थी। जहां स्त्री पीढ़ियों की शिक्षक व अभिभावक थी। मातृ और वात्सल्य प्रधान भारत आज गर्त की ओर अग्रसर है क्योंकि वो उन भौतिकवादियों और अत्यंत पिछड़े विश्व का अनुसरण कर रहा है जिनका अनुसंधान, जिनकी रूढ़ियाँ, जिनका विज्ञान, जिनकी सभ्यता हम जंगलियों से हजारों साल बाद की है। हां हम वो जंगली हैं जिसे दस वर्ष की आयु तक माँ ने पढ़ाया है, जिसका गुरुकुल जंगल है, जिसकी प्रयोगशाला जंगल है, जो २५ से ५० साल तक गृहस्थ है। हम वो जंबूद्वीप वासी हैं जहां जन्म जंगल है, जहां मृत्यु जंगल है, जहां उल्लास जंगल है, जहां प्रलाप जंगल है, जहां एकांत जंगल है, जहां अध्यात्म जंगल है. जहां ऊर्जा का सिद्धांत है, जहां पृथ्वी गर्भ है, जहां विश्व कुटुम्ब है, जहां सीमाएं नहीं हैं, जहां धर्म नहीं है, जहां प्रत्येक जीव आत्मा है, जहां सत्ता की लालसा नहीं है, जहां झूठा दिखावा नहीं है, जहां शान या प्रतिकार नहीं है, जहां मानव शांत है। जहां हजारों सालों से अतिक्रमण में भी जीवित निरपेक्ष साधुओं या फकीरों की वो जमात है जो जंगलों में बैठे इस सवाल का जवाब खोज रहे हैं कि –

“मानव क्या है? वो क्यों आया इस धरा पर? क्या वो भी अन्य जीवों की तरह जीवन जीने का यत्न करे और उसके बाद प्राण त्याग दे?”

आओ दोस्तों चलें अब वापस अपने जंगलों की तरफ जहां सीमाओं में बंधे राष्ट्रों की तरह विध्वंस और मृत्यु का विकास नहीं है, जहां विकास है मानव का पारलौकिक विज्ञान, प्रकृति और मानवता में। जहां स्वयं की खोज है.....

मन भावन ऋतुराज है आया.....

मनोज कुमार शुक्ला

मन भावन ऋतुराज है आया,
हिलमिल स्वागत कर लो।
खुशियों की सौगातें लाया,
प्रेम की झोली भर लो।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

गूँज रहा मृदुगान मधुप का,
मधुर पराग लपेटे।
कोयल कूक रही कुंजन में,
प्रियतम याद समेटे।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

पिऊ-पिऊ की रटन लगाये,
राह निहारे पपीहा।
अधरों की कब प्यास बुझेगी,
सोच रहा है पपीहा।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

श्याम वर्ण अम्बर मुस्काया,
नीली चादर ओढ़े।
घूँघट से वसुधा मुसकाई,
पीली चुनरी ओढ़े।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

वन पलाश के झूम रहे हैं,
सजा डालियाँ लाली
रंग -बिरंगे फूल हँस रहे,
वसुधा की हरियाली से।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

कदंब, नाग-केसर और चम्पा,
सूरज - मुखी , चमेली ।
गेंदा, गुलाब, केतकी ,सरसों,
लगती सभी रुपहली ।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

अमराई में बौरें फूलीं,
खेतों में पीली सरसों ।
गेंहूँ की बालें हरषायीं,
खुशियाँ बरसी बरसों ।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

रंग बिरंगी होली आ गई,
गले मिल रहे अपने ।
गलबहियों को डाल सुहाने,
झूम रहे हैं सपने ।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

प्रेमासक्त लताएँ उलझी,
तरुवर भुजबल अंकन में ।
रंग रूप और गंध बसंती,
छाई चतुर्दिशाओं में ।
मन भावन ऋतुराज है आया.....

यदि मैं होता घन सावन का ....

गोपालदास नीरज

पिया पिया कह मुझको भी पपिहरी बुलाती कोई,
मेरे हित भी मृग-नयनी निज सेज सजाती कोई,
निरख मुझे भी थिरक उठा करता मन-मोर किसी का,
श्याम-संदेशा मुझसे भी राधा मँगवाती कोई,
किसी माँग का मोती बनता ढल मेरा भी आँसू,
मैं भी बनता दर्द किसी कवि कालिदास के मन का।
यदि मैं होता घन सावन का॥

आगे आगे चलती मेरे ज्योति-परी इठलाती,
झांक कली के घूंघट से पीछे बहार मुस्काती,
पवन चढ़ाता फूल, बजाता सागर शंख विजय का,
तृषा तृषित जग की पथ पर निज पलकें पोंछ बिछाती,
झूम झूम निज मस्त कनखियों की मृदु अंगड़ाई से,
मुझे पिलाती मधुबाला मधु यौवन आकर्षण का।
यदि मैं होता घन सावन का ॥

प्रेम-हिंडोले डाल झुलाती मुझे शरीर जवानी,
गा गा मेघ-मल्हार सुनाती अपनी विरह कहानी,
किरन-कामिनी भर मुझको अरुणालिंगन में अपने,
अंकित करती भाल चूम चुम्बन की प्रथम निशानी,
अनिल बिठा निज चपल पंख पर मुझे वहाँ ले जाती,
खिलकर जहाँ न मुरझाता है विरही फूल मिलन का।
यदि मैं होता घन सावन का॥

खेतों-खलिहानों में जाकर सोना मैं बरसाता,
मधुबन में बनकर बसंत मैं पातों में छिप जाता,
ढहा-बहाकर मन्दिर, मस्जिद, गिरजे और शिवाले,
ऊंची नीची विषम धरा को समतल सहज बनाता,
कोयल की बांसुरी बजाता आमों के झुरमुट में,
सुन जिसको शरमाता साँवरिया वृन्दावन का।
यदि मैं होता घन सावन का ॥

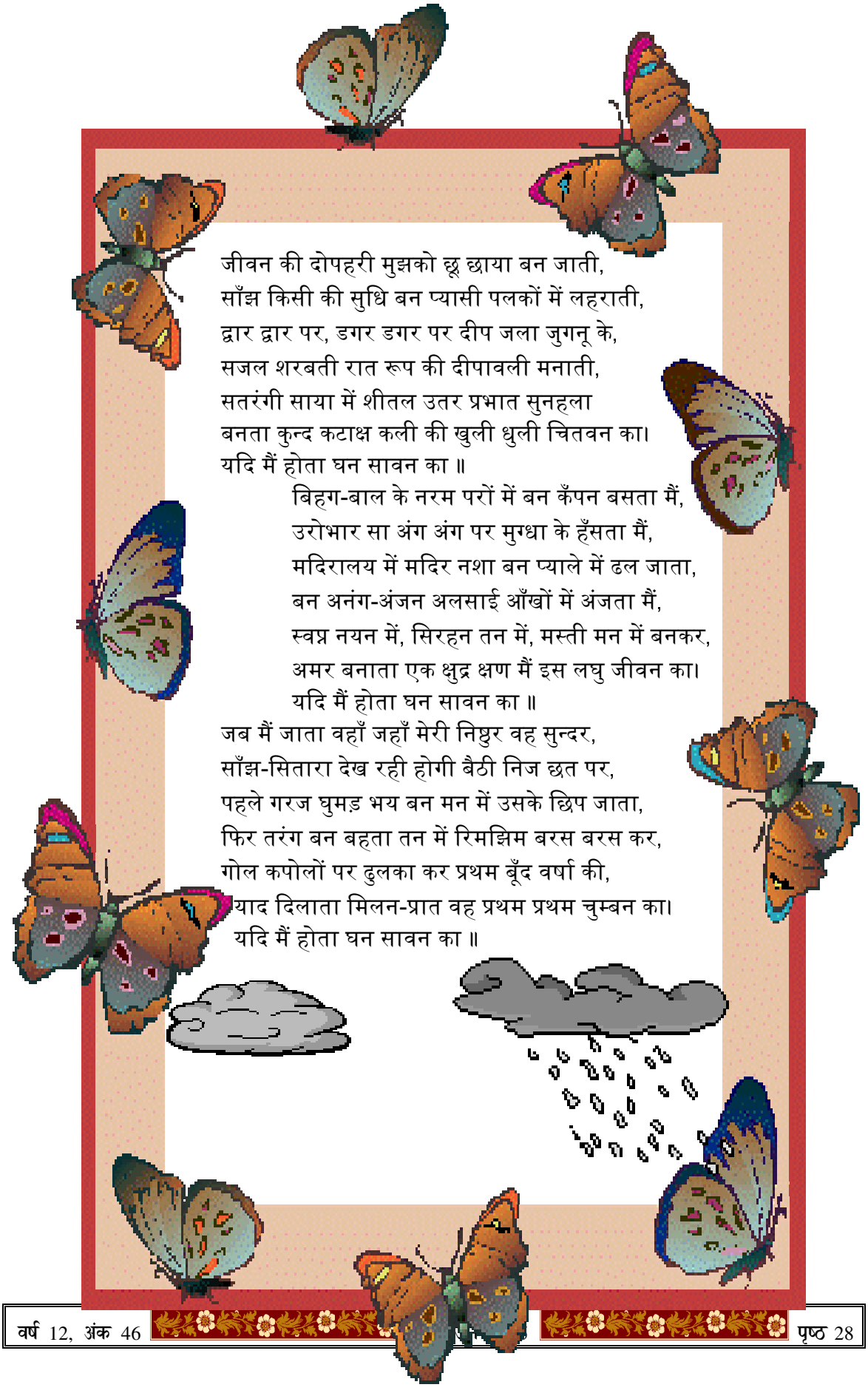

जीवन की दोपहरी मुझको छू छाया बन जाती,
साँझ किसी की सुधि बन प्यासी पलकों में लहराती,
द्वार द्वार पर, डगर डगर पर दीप जला जुगनू के,
सजल शरबती रात रूप की दीपावली मनाती,
सतरंगी साया में शीतल उतर प्रभात सुनहला
बनता कुन्द कटाक्ष कली की खुली धुली चितवन का।
यदि मैं होता घन सावन का ॥

बिहग-बाल के नरम परों में बन कँपन बसता मैं,
उरोभार सा अंग अंग पर मुग्धा के हँसता मैं,
मदिरालय में मदिर नशा बन प्याले में ढल जाता,
बन अनंग-अंजन अलसाई आँखों में अंजता मैं,
स्वप्न नयन में, सिरहन तन में, मस्ती मन में बनकर,
अमर बनाता एक क्षुद्र क्षण मैं इस लघु जीवन का।
यदि मैं होता घन सावन का ॥

जब मैं जाता वहाँ जहाँ मेरी निष्ठुर वह सुन्दर,
साँझ-सितारा देख रही होगी बैठी निज छत पर,
पहले गरज घुमड़ भय बन मन में उसके छिप जाता,
फिर तरंग बन बहता तन में रिमझिम बरस बरस कर,
गोल कपोलों पर ढुलका कर प्रथम बूँद वर्षा की,
याद दिलाता मिलन-प्रात वह प्रथम प्रथम चुम्बन का।
यदि मैं होता घन सावन का ॥

बदलाव

पद्मा मिश्रा

दीदी अस्पताल से घर आ गई हैं ...चार कंधों पर सवार ..घर की दहलीज से कमरे तक का सफर भारी हो रहा है...कमरे का सन्नाटा अचानक महिलाओं, बच्चों के रुदन से गूंज उठा. आज घर की मालकिन, लक्ष्मी --चली गई ..पर अपने पीछे यादों का एक लम्बा काफिला छोड़ कर ...घर-आंगन में बिताये पचास वर्षों के संग साथ ...गृहस्थी के सुख दुःख, हर्ष -विषाद के पलों को आत्मसात करती हुई--वृद्धावस्था तक का सफर आज पूरा कर अपनी अंतिम यात्रा पर चल पड़ीं ....उनकी शांत मुख मुद्रा मानो कह रही हो --"लो सम्भालो अब अपना घर-बार....मै तो चली ".....बिलख रही हैं बेटियां ...रो रही हैं बहुएं...."हम तो नहीं थके माँ ..आपकी सेवा करते ..पर आप क्यों चली गईं?"....कौन सुनता?...और कौन झिड़कता --"ये बिना मतलब का शोर गुल काहे लगा रखा है रम्भा?"...

अचानक रम्भा सहम कर चुप हो गई -"अभी सब तैयारी तो उसे ही करनी है ...पर क्या करे ..कैसे करे ?..कौन बतायेगा ? अब तक तो माँ ही सब सम्भालती रहीं, बताती थीं, घर खानदान के सारे नियम, संस्कार, पर अब क्या ? सभी हतप्रभ खड़े हैं. सभी चाचियाँ, बुआ जी, बेटियां....सबकी अपनी अपनी राय, अपने अनुभव....

"अरे रम्भा ..घी लाओ ..और चन्दन भी, लेप करना पड़ेगा" रम्भा उठ कर चली ही थी कि बुआ जी ने टोका--"फूलों व नई साड़ी के लिए बोल दिया हैं विपिन को?" रम्भा सिर हिलाती चली गई ...

दीदी वर्षों से बीमार थीं. जीजा जी के जाने के बाद तो और भी कमजोर हो गई थीं. किडनी, हार्ट, लीवर से जुडी कौन सी बीमारी थी जो उन्हें नहीं थी ...पर दिल से अपना हौसला नहीं टूटने दिया था दीदी ने. सबको सम्भाला था - बेटे, बहुओं, घर गृहस्थी, लेन देन, संस्कार, परम्पराएँ....सब.....

किसी पड़ोसिन ने टोका "इनका सिंगार भी तो करना है"....छोटी बहु मीनू चौंक उठी -"नहीं नहीं ..माँ तो विधवा थीं .....सिंगार नहीं ".....हाथों पर चन्दन लपेटती नाउन बोल उठी -"चूड़ियाँ लाओ - कांच वाली "अबकी रम्भा ने कड़ा प्रतिवाद किया--"नहीं ..वो सब नहीं होगा."

बेटियों का दर्द और पीड़ा कुछ दूसरी ही थी. माँ के जाने के बाद उत्पन्न असुरक्षा का भय उन्हें सता रहा था. गाहे बगाहे जरूरत पड़ने पर माँ चोरी छुपे उनकी मदद कर देती थीं. पर अब भाभी कितना साथ देंगी ....उनके आंसुओं में शंकाएं भी थी और भय भी. बड़े दामाद जी और बड़ी बेटी संध्या ने यह अभिव्यक्त करने में कोई कमी नहीं की कि माँ से उनका लगाव सबसे ज्यादा था ...सबसे ज्यादा सेवा उन्होंने ही की थी.....किसी ने बाल मुंडाए तो कोई बढ़-चढ़ कर सारी व्यवस्था सम्भाल रहा था ...सब दिखावे और प्रदर्शन के लिए अपनी अपनी संवेदनाएं दांव पर लगा रहे थे. फोटो ग्राफर के आगे दीदी से सट कर रोआंसी मुद्रा में तस्वीरें खिंचवाने की होड़ सी लग गई थी.

मै आंसुओं में डूबी सोच रही थी कि "सुना था कि दुःख संक्रामक होता है...पर क्या दुःख सम्वेदन विहीन और दिखावा मात्र भी होता है, यह आज ही देखा था. मुझे दीदी की बहुत याद आई...इस पल वो होतीं तो बिना किसी लाग लपेट के न इस पार सोचतीं न उस पार. बीच का रास्ता निकाल लेतीं "जो है, वही रहने दो." मेरी आँखें भर आईं.

औरतों की किच पिच जारी थी .. तभी विपिन के दोस्तों ने मोर्चा सम्भाल लिया.

माथे पर चन्दन....अबीर सजा, फूलों का श्रृंगार कर - साध्वी बनी दीदी को ले सभी चले गए. महिलाओं का रुदन शांत हो चुका था. शेष बची सामग्रियों को हटा दिया गया. घर धुला. अब स्नान की बारी थी. रम्भा ने बुआ जी से पूछा 'बुआ जी! आज तो सब साथ ही नहायेंगी न ?"

"पता नहीं बहुरिया, मुझे तो ज्यादा याद नहीं आता, लेकिन भैया के समय तो ...."

बुआ जी की बात पूरी होने के पहले ही पड़ोस वाली चची जी बोल उठीं "हाँ, हाँ! शर्मा जी के समय का तो मुझे भी याद आता है, सब घर ही जाकर नहाई थीं."

रम्भा ने मंझली सास की ओर प्रश्न वाचक निगाहों से देखा "मुझे भी याद नहीं आता रे."

तब छोटी बहु ने ही हल निकाला "अगर नहाना ही है तो यहाँ भी थोडा सा पानी शरीर पर डाल कर अपने अपने घर जाकर फिर से नहा लेंगे. "

ऐसा ही किया गया क्योंकि बहस करने का कोई फायदा भी नहीं था. जो दीदी जीवन भर नियमों, कायदों, परम्पराओं को ढोती रही थीं आज उनके अंतिम कर्म कांड में जैसे-तैसे परम्पराएँ निभाई जा रही थीं.

शाम को फलाहार था सबने अपने अपने हिसाब से किया. परेशानी बच्चों के खाने की थी. लेकिन दीदी के पड़ोसियों ने अपना अपना धर्म निभाया और ढेर सारा खाना भेज दिया. वह रात चुपके से उलझनों, नियमों, सामाजिक कानूनों में डूबी-सी बीत ही गई. विपिन ने संस्कार के सारे कर्मकांड निबटाये थे अतः रम्भा को ही उसके खाने की व्यवस्था संभालनी थी. बाकी सब कुछ औपचारिक चल ही रहा था. बड़ा परिवार था. सबके घर पास पास ही थे अतः बगैर किसी विशेष हंगामे के सारी क्रियाएं पूरी हो रही थीं. पंडित जी ने बताया था कि दस दिनों तक साबुन-तेल, नहाना, बाल धोना, कपडे धोना वर्जित है. लेकिन स्नान सभी करते थे. शाम को सभी एकत्र होते गरुड़ पूराण सुनने के लिए. रात का भोजन वही बनता. पर सभी बहुएं, चाचियाँ, बेटियां एक दूसरे को अविश्वसनीय नजरों से देखते कि कहीं उसने ये नियम तो नहीं तोड़े हैं.

"आपके कपड़े बड़े साफ लग रहे हैं भाभी....धोये क्या?"

बुआ जी आदतवश बोल पड़ीं "कैसे धोयेंगे? जब धोना ही नहीं है तो बाथरूम में ही छोड़ देते हैं. बहू साफ करती है. "

भाभी ने मोर्चा संभाला, पर बुआ जी कहाँ चुप होने वाली थीं, उनकी बहू वहीं बच्चे को सुला रही थी पूछ ही लिया "क्यों दिव्या ?"

वह सकपका गई "नहीं तो ?"

सबने राहत की सांस ली पूरे परिवार ने एक तरह से परिस्थितियों के आगे समर्पण कर दिया था, या यों कहें कि एक अघोषित समझौता ही था जिसे सब निभाए जा रहे थे. दीदी ने कभी जिन्दगी से समझौता नहीं किया था, बस फैसला सुना देती थीं. सामने वाला कोई भी हो वह निडरता से अपनी बात कह डालती थीं. जब जीजा जी नहीं रहे थे तब भी दुःख व वेदना से शिथिल होकर भी एक भी नियम और परम्परा को लीक से बेलीक नहीं होने दिया था उन्होंने. और अब तो वर्षों का अन्तराल था और पीढ़ियों का अंतर भी आ गया था.

शोक संतप्त परिवार के भोजन में अब चटनी, सलाद, रायता, पापड़ जैसे चीजें भी शामिल हो गई थीं. ठीक भी था, डायबिटीज की मरीज मंझली भाभी चावल कैसे खा सकती थीं ? अतः उनका दूसरा विकल्प ढूंढ लेना भी जायज था. रोटी नहीं बनानी है तो ब्रेड ही खा लेंगे. तेल-हल्दी का प्रयोग नहीं करना तो रेडीमेड मसालों से काम चल जायेगा.

मै बस दीदी के परिवार में आ रहे अनोखे बदलाव को देख रही थी. जब तक वे जिन्दा थीं, मज़ाल थी कि कोई कुछ बोल दे या कर दे पर आज वे नहीं हैं तो सबकी अपनी अपनी राय, मत, फैसले - समझौतों का शिकार हो नई नई परम्पराएँ गढ रहे थे.

बालकनी में कुर्सी पर चुपचाप बैठी रम्भा उदास थी. मै उसके पास जाकर बैठ गई. सांत्वना भरा हाथ उसके सिर पर फेरा तो उसकी आँखें भर आईं, "मै कैसे सम्भालूँगी सब मौसी जी? सब कुछ नया नया अपनी मर्जी से हो रहा है "..

"कुछ भी नया नहीं है रम्भा, जब नदी की बाढ़ आती है तो अपने साथ कुछ नई मिट्टी लाती है और उपजाऊ मिट्टी को साथ बहा ले जाती है. ये दुःख भी नदी का बहाव है. कुछ नियम टूटते हैं, तो कुछ बनते भी हैं. हर आने वाली पीढ़ी कुछ नया जोड़ेगी. नई परम्पराओं की नींव पड़ेगी ही. यही तो विकास है. सोच और पीढ़ियों का बदलाव है. इन्हें तर्क की कसौटी पर मत कसो, जो हो रहा है होने दो. दीदी होती तो ऐसा ही करतीं."

रम्भा का अशांत मन शांत हो चुका था. परिवार में परम्पराएँ टूट रही थीं पर कुछ नई और अच्छी सीख भी दे रही थीं. संवेदनाओं के नए प्रतिमान बन रहे थे....

युगान्तर

मनोरमा तिवारी

युग सचमुच बदल रहा है
अमृत का घर जैसे ज्वाला में जल रहा है.
प्रकाश की गति तीव्र है ध्वनि से
उससे भी तीव्रगामी है
अस्थाओं का परिवर्तन.

त्याग, करुणा, परोपकार
बीते युग की हैं यादगार
आज का श्रुतिवाक्य तो यह है
येनकेन प्रकारेण अपना स्वार्थ पूरा कर
अपनी दुर्दशा पर ध्यान मत दे
मेरी तिजोरी को अभी पूरा भर.
होम करते हाथ जलना
कहावत पुरानी है
लेकिन यह तो आधुनिकतम कहानी है
पर क्या करोगे मेरे भाई?
बहुत थोड़े खा रहे हैं पुण्य की कमाई.
आँखों देखी और कानों सुनी में
बहुत अन्तर होता है
भारी उथल-पुथल हो जाए
तभी युगान्तर होता है.
करोड़ो महारथियों में धर्मराज एक ही था
यों तो अपने-अपने मत में
प्रत्येक व्यक्ति नेक ही था.
मेरे देश को फिर से
कुरुक्षेत्र मत बनाओ
संक्रमण लाना ही है तो
सिद्धान्त में नहीं
धीरे ही सही
पर वास्तव में लाओ.

रामू काका डॉट कॉम

विजय उपाध्याय

रामू काका डॉट कॉम का बोर्ड जब मेरे कार्यालय के सामने प्रॉपर्टी डीलर का बोर्ड हटा कर लगाया गया तो मेरी समझ में कुछ न आया। कैम्पस में दस–बारह दुकानें हैं और उनके पीछे कहीं सिंगल कहीं डबल रुम सैट बने थे। आगे की दुकानों में ज्यादातर कार्यालय और पीछे सुविधानुसार रिहायश या स्टोर। रामू काका डॉट कॉम वाली दुकान के पीछे दो कमरों का सैट था, मतलब कोई परिवार या दो–चार कर्मचारी रहेगें। रामू काका डॉट का बडा सा बोर्ड दूधिया टयूब लाईट में जगमगा रहा था। कैम्पस में एक डॉक्टर का कलिनिक, एक लैब, मैडीकल स्टोर, ऑप्टिकल सैंटर, मोबाईल रिपेयर, ब्यूटी पार्लर, फैशन रेडिमेट गारमेन्टस, बीमा एजैन्ट, भार्गव ज्योतिष केन्द्र, एक हलवाई और सीढियों के नीचे छोटी सी नाई की दुकान के एक आगे बॉम्बे हेयर कटिंग का बोर्ड टंगा था। कैम्पस के सभी लोग अपने–अपने काम के साथ एक दूसरे के धन्धे की चालाकियां, ग्राहको की नौटंकी और आने वाले लोगों पर पूरी नजर रखते। खाली समय में एक दूसरे पर तंज कसते और खट्टी मीठी नोंक झोंक मनोरंजन का काम करती। अलग–अलग काम धन्धे के बावजूद पूरा कैम्पस एक यूनिट की तरह था। किसी एक के साथ गड़बड़ होती तो सभी का समर्थन तुरन्त मिल जाता। कैम्पस से ग्राहक खाली हाथ न लौटे – यह सामूहिक प्रयास रहता।

चार दिनों तक जब रामू काका डॉट कॉम का कार्यालय नहीं खुला तो कैम्पस में चर्चा आम हो गई। आखिर है क्या बिजनैस? कौन रहेगा, क्या करेगा? सभी जानने के लिये उत्सुक। काना फूसी हो रही थी – न जाने क्या धन्धा होगा – कैम्पस को सूट भी करेगा या नहीं। नाम तो कुछ माडर्न कुछ अजीब सा है – रामू काका डॉट कॉम। पांच दिन बाद एक तिलक, चुटिया, धोती धारी अधेड़ ने कार्यालय खोला, दो और गंवई से युवक उनके साथ थे। मेरा बीमे का काम सुबह के समय कम रहता है हाथ में नये वर्ष का कैलेण्डर उठाए मैने उनके कार्यालय में दस्तक दी, उन्होंने तुरन्त अभिवादन करते हुए स्वागतम् की मुद्रा में हाथ जोडे – मैंने संक्षेप में अपना परिचय दिया और हाथ में पकड़ा बीमा निगम का कैलेण्डर आगे बढ़ा दिया। कामकाज तो उनके पास भी न था, न कोई ग्राहक। मैंने अंदर झांक कर देखा – कोई सामान न था। कार्यालय में कुछ ही चीजें नजर आई – एक लैण्डलाईन जैसे हैंण्डसैट वाला टैलीफोन, दूसरा दीवार पर टंगा चौदह इंच वाला रंगीन टी0वी0 तथा तिवारी की गोद में रखा लैपटॉप, चार छः कुर्सियां और वाटरकूलर के ऊपर औंधा धरा गिलास। मैंने पूछा भाई साहब ! कब कर रहे हो श्री गणेश .... ? अरे ! वो तो हो गया बैठ गये न गददी पर ... अब देखते है क्या होता है। माल कब आ रहा है.... ? मैने उत्सुकतावश पूछा। माल थोड़े न बेचेंगे। तो खरीद करोगे... ? न खरीदेंगे और न बेचेंगे। मतलब ... ? मैं राधेश्याम तिवारी एक कंपनी चलाता हूं, यहां सिर्फ आफिस रहेगा । मेरे पल्ले अभी भी कुछ खास न पड़ा था, उसने ज्यादा खुलासा न किया, नजरें टी0वी0पर गड़ा दी । मैं वापस अपने ऑफिस आ गया यह सोच कर कि मार्किट में बैठा है –क्या करेगा एक दिन तो पता चला ही जायेगा।

दूसरे दिन सुबह अखबार खोली तो रामू काका डॉट कॉम का पम्पॅलैट पाया, लिखा था घरेलू नौकर, रसोईया, माली, वाचमैन, केयर टेकर के लिए उम्दा एंव भरोसेमंद सेवा अब आपके शहर में आपके घरद्वार पर उपलब्ध होगी। रेट काम देखकर तय होगा। केवल पुरूष नौकर के लिये ही आवेदन करें। महिलाओं की सेवा हेतु गंगू बाई डॉटकॉम पर सम्पर्क या लॉग आन करें। नीचे दो तीन मोबाईल न0 और मेल आईडी लिखी थी । लोकल टीवी चैनल पर विज्ञापन की पट्टी लगातार चल रही थी – उचित दामों पर प्रशिक्षित घरेलू नौकर, रसोईया, माली, वॉचमैन, केयर टेकर के लिए सम्पर्क करें – रामू काका डॉट काम, स्वामी हरिगिरी काम्पलैक्स।

सुबह ग्यारह बजने तक कम्लैक्स में भीड़ जुटनी शुरू हो गई। रामू काका डॉट कॉम में खूब चहल–पहल थी। दो चार पार्टियां हर वक्त लाईन में थी। संचालक राधेश्याम तिवारी बता रहे थे– सर ! हमारी सेवायें लीजिए, सभी झंझटों से छुटकारा पाये। पुलिस वैरीफिकेशन से लेकर कोई नौकर बड़ा नुक्सान कर दे, माल मत्ता लेकर भाग जाये उसकी जिम्मेवारी हमारी। रजिस्टर्ड संस्था है, हमारे पास लगभग सभी जाति के नौकर मिलेंगे, ज्यादातर ब्राह्मण हैं जिनसे आप रसोई और अन्य सभी काम ले सकते हैं। एक महीना रखकर देखिए, काम में शिकायत हो तो हमारे नम्बर पर शिकायत दर्ज करवायें, 24 घण्टें के अन्दर–अन्दर रिजल्ट मिलेगा फिर भी संतुष्ट न हों तो पहली तारीख को तबादला करके दूसरे की व्यवस्था हमारी जिम्मेवारी रही। एक पार्टी ने पूछा ब्राह्मण ही क्यों रखे हैं––? क्या करें साहिब––– आरक्षण की मार से त्रस्त हैं। थोडी बहुत नौकरियां है तो वे उच्च कुलीन, सरमाईदार सवर्णो के लिए हैं–– हम गरीब गुरवा तो यही करेंगे। घर से कोसों दूर कौन भाण्डे मांज रहा है और कौन झाड़ू बुहार रहा है–– ई–कौन जानत है–– बस घर का चुल्हा जलना जरुरी है। इसके लिए हम गांव देहात से योग्य एवं ईमानदार लोग भर्ती करते हैं, उन्हें प्रशिक्षित करते हैं फिर योग्यतानुसार काम देते हैं, ताकि नौकर और मालिक को कोई परेशानी न हो। हर माह मालिकों की मीटिंग इस कार्यालय में होती है यहां वह अपनी समस्याएं बता सकते हैं। दूसरी पार्टी ने पूछा वेतन कैसे तय करते है? फिक्स रेट है जी –– यह बोर्ड देखिए

साधारण घरेलू नौकर–– पांच हजार प्रति माह
वॉच मैन, केयर टेकर –– पांच हजार
माली –– छ हजार
रसोईया एवं ड्राईवर –– सात हजार

बोर्ड के नीचे एक नियमावली भी चस्पा थी –– झाड़ू पोंछा, बर्तन मांझना, कपड़े धोना, कुत्ता पालने का अतिरिक्त रुपया देना होगा। साधारण नौकर माली, रसोईया और वाचमैन का काम नही करेगा। बाचमैन किसी का सामान नही उठायेगा, रसोईया शाक भाजी एवं दाल मसाले बाजार से स्वंय लायेगा मालिक को केवल रुपये देने होंगे। बीच में वोल्ड अक्षरों में एक विज्ञापन था–– **रामू काका डॉट कॉम आयें घरेलु झंझटों से छुटकारा पायें,** चार दिन की चांदनी है जीवन को मजेदार बनायें। फार्म पर अता–पता, फोन नम्बर, पद, पेशा अवश्य भरें तथा घोषित करें कि वह नौकरों पर घरेलु हिंसा नही करेगें और बेतन हर माह की दो तारीख को एडवांस जमा करवायेंगे । फार्म का मूल्य केवल सौ रूपये नीचे एक चलताऊ सी तुकबंदी लिखी थी.....

नौकर के लिये रिहायश, खाना–पीना, कपडा, जूता मालिक के सिर ...!

जब से रामू काका डॉट कॉम हमारे शापिंग कम्पलैक्स में आया है, रौनक बढ़ गई है । चाय समौसे वाले की तो पौ–बारह हो गई । खुद राधेश्याम तिवारी शाम तक खूब चाय और ठण्डा मंगवाता । अमीर लोगों की गाड़ियों की रेलमपेल मची रहती है। कम्पलैक्स में हर किसी का बिजनैस बढ़ा है।

महीना भर लोग रजिस्ट्रेशन करवाते रहे, नौकरों की पहली खेप ब्लैक में बंटी । अतिरिक्त सरचार्ज देने वाले को नौकर पहले उपलब्ध करवाये गये फिर दूसरी और तीसरी और खेप भी शहर में सेवार्थ आ पंहुची । देरी से रजिस्ट्रेशन करवाने वाले प्रतीक्षा सूची में पड़े–पड़े इन्तजार कर रहे थे। धंधा चल निकला प्रतीक्षा सूची लम्बी होती गई।

कुछ दिनों तक सब ठीक चला मगर महीने बाद ही शिकायतों की फाईल मोटी होने लगी, टैलीफोन की घण्टी घनघनाने लगी । राधेश्याम तिवारी ने अब अपने टू रूम सैट के एक कमरे को अदालत में तबदील कर लिया । शिकायत वाली फाईल खुलती, जिसकी भी शिकायत निकलती

तिवारी उसका पांच सौ रूपया वेतन से पहले ही काट लेते फिर होता शिकायत का निपटारा।

दोबारा शिकायत आने पर एक हजार रूपये काटे जाते।

शिकायत में लिखी एक–एक बात तफसील से पूछी जाती । उत्सुकतावश मैं भी खाली समय में राधेश्याम तिवारी की अदालत में कार्यवाही देखने पहुंच जाता । आप भी देखें ।

केस न0 1 – हां तो मिश्रा जी यह बताइये कि चार किलो दूध की मलाई रोज–रोज कहां गायब हो जाती है – और टायलेट में बीडी पीने के बाद हाथ भी नही धोते। साले डोम ..... दिमाग पर चर्बी चढ़ गई क्या – बोल सुधरेगा या कटवा दूं वापसी का टिकट – मुआफ कर दें बडे भाई आगे ऐसा नही होगा । चल भाग ले अब ।

केस न0 –2 तो झा जी आप बताइये सब्जी–भाजी दही और बड़ियां लेने में कितना टांका लगा रहे हो – हिसाब–किताब पर मालिक को प्रवचन सुनाते हो ..... रजक की औलाद वहां मैला ढोने की भी मजदूरी नही मिलती ... सुधरेगाा या जायेगा नरक वापस.. झा ने पैर पकड़ लिये दोवारा गलती न होगी दाऊ ...।

केस न0 3 पाठक जी आप बताइये फूल पौधों के नाम आई खाद और स्प्रे कहां बेच दीं खाली पानी का छिड़काव करते फिरते हो .... यह सरासर झूठ है हम चोर नाहि । अबे मण्डल के डंडल अक्ल होती तो यहां आकर घास क्यों छीलता । तूने माल भी बेचा तो अपने मालिक के रिश्तेदार की दुकान पर .....फिर ससुरा किस मुह से हरिष्चंद्र बन रहा है । चल तेरा तबादला करता हूं खान की जगह । उसकी जगह पहुंच जा और उसे अपनी जगह भेज दे।

केस न0 4 पांडे जी यह बताएं कि आप भांडे मांजने या झाड़ू बुहारने भेजे है या ज्ञान झाड़ने ... ? मालिक कितना भी बड़ा मूर्ख क्यों न हो उस के आगे ज्ञान दिखाने या बड़ा बनने की ज़रूरत नही। ऋषिदेव जी तुम छोटे रहोगे तो ही उन्हे मालिक होने की फीलिंग आएगी। मालिक के आगे ज्ञान दिखाने की ज़रूरत नही लल्लू बने रहो और हां तुम उन की विहस्की की बोतल से पैग निकाल कर पानी क्यों डाल देते हो ... स्साले रामू काका हो .... दामाद नही । चल दफा हो दोबारा शिकायत आई तो हजार रूप्पये काट लूंगा।

केस न0 5 दुबे जी आपने मालिक के टॉमी के साथ क्या किया स्वयं ही बताएं क्या समस्या है... क्या बताऊं दाऊ अपनी जिन्दगी तो कुत्ते से भी बदतर है। शैम्पू से नहाना, गाड़ी मे जाना, दिन को साथ घुमाते हैं तो रात को साथ सुलाते हैं। हगने मूतने मैं ले जाता हूं और काटने भी मुझे ही दौड़ता है..... ये देखिए मेरी टांग... साले ने कितनी बार नोंच ली । मालिक कहता है टीके लगवाए हैं.... कुछ न होगा । दी मैने भांग की गोली..... अपनी ही पूंछ को पकड़ने के लिए तीन दिन गोल गोल घूमता रहा तब जा कर राम नाम सत्य हुआ। अबे मुसहर के मूसल..... ! बड़े लोग हैं गइया मैया तो पालेंगे नहीं... तुम लोग कुत्तों से वैर रखोगे तो हो गई नौकरी.... अपनी अपनी किस्मत है समझते काहे नहीं.... चल दोबारा ऐसा मत करना ।

केस न0 6 दूबे जी! तुम बताओ मालकिन के सिर मालिश करते करते तबीयत बिगड़ गई कि इधर उधर हाथ मारने लग पड़े । शुक्र है मालिक ने तुझे चार जूते मार कर छोड़ दिया गोली नही मारी, तेरे बच्चे सारी उम्र जूते गांठते रहते। हम तो रोज ही अच्छे से मालिश करते रहे दाऊ..... मालकिन कई बार इनाम भी दिए रहे ... अब मालिक ने देख लिया तो हम का करें ? मालकिन तो कुछ ना कहे दाऊ ! अबे ! अक्ल के अन्धे मालिश वालिश छोड़ आज से तुझे वॉचमैन लगाता हूं तन कर खड़े रहना सारा दिन तब अक्कड़ टूटेगी ।

केस न0 7 अरे दिवेदी वॉचमैन की वर्दी में खुद को एस एस पी समझने लगे हो.... ? क्या जरूरत है सोसाइटी की महिलाओं के बैग की तलाशी लेने की .....? महिलाओं के अण्डरगारमेंट निकाल निकाल कर क्या ढूंढ रहा था ... ? साले तेरी किस्मत ठीक रही कि चार छः जूते मार कर छोड़ दिया अन्यथा खाल खींच कर भुस्स भरवाकर सोसाइटी के गेट पर खड़ा कर देते। बोल कहां भेजूं..

केस न0 8 केयर टेकर महाराज चौबे जी ! तुम बताओ कर्नल साहब की कोठी को रैस्ट हाऊस बना डाला... सारे शहर के जुआरी और शराबियों का अडडा बना रखा है और फिर सफाई भी नही रखते। शुक्र मना कि उनकी बेटी आ धमकी ... कर्नल साहब पधारे होते तो तुम नरक सिधारे होते। कल से माया सोसाइटी चले जाओ तन कर बारह घंटे खड़ा रहेगा तो सारी होशयारी चली जाएगी।

शाम को आफिस से निकलने लगा तो तिवारी ने आवाज दी .... बाबू साहेब ! आज रूको हमारे पास... पार्टी करेंगे । दो बड़े पैग नीट ही गटकने के बाद राधेश्याम तिवारी खुद ही बोले... लगता है रामू काका डॉट कॉम बंद ही करनी पड़ेगी मैने पूछा क्यो अच्छी भली तो चल रही है पैसा भी खूब कमा रहे हो..... ! ऊंह ! पैसा तो है मगर ये भंगी, चमार, कुर्मी, मुसहर, रजक, डोम और मंडल किसी दिन मरवा देंगे। मैं समझा नही.... बाबू जी यह जितने भी दुबे, पाण्डे, मिश्र, झा, तिवारी है न ... सब बिहारी है। किसी काम के नही... वहां दो दिन की मज़दूरी के लिए तरसते हैं, यहां अच्छा खाते पीते ही इनके दिमाग पर चर्बी चढ़ जाती है। पण्डित बना कर धोती टीके लगवाए मगर इनके काम वही रहे ..... अब जब हकीकत पता चलेगी तो यही बड़े लोग गन्ने की तरह पेल कर रख देंगे मुझे । बाहर जा कर मज़दूरी भी करें तो हाड़ तोड़ मेहनत के बाद भी पल्ले कुछ नहीं पड़ता, रोटी पानी और किराये भाड़े मे ही खत्म हो जाते हैं।

सिगरेट का लंबा कश खींचते हुए बोले... पहले गंगू बाई डॉट कॉम पिटी। मतलब ... ? अरे यार वही घघरिया पलटन और अब ये मुसहर श्मशान तक पहुचाकर रहेंगे।

तुम्हारा दावा है दोस्त

डॉ. वेद प्रकाश वटुक

तुम्हारा दावा है दोस्त
कि तूमने मनसा-
वाचा-कर्मणा
जिया है सच
एक बात पूछूँ
सच-सच बताना
तुम जिंदा क्यों हो?

नेमी बाबू

रंजन ज़ैदी

हलो बाबू मोशाय! नेमी बाबू, नेमिशरण राय. आमी-----आमी नेमी बाबू। तुम्हारी बगल वाली सीट पर बैठता है मैं------।

उनका हाथ मेरी ओर बढ़ आया था। मैंने लपक कर जब उनका हाथ थामा तो वह तिनके की तरह एकाएक लहरा से गये थे । देखने में बेहद कमज़ोर थे नेमी बाबू। उनके दोनों कानों के ऊपर और पीछे गर्दन तक सुनहरी बालों की लटें बिखरीं हुयीं थीं। एक निचुड़े चेहरे वाले स्याह रंगत के नेमी बाबू के चहरे पर मुझे तनिक भी दंभ या ऐटीट्यूट के लक्षण नजर नहीं आए थे। यह बात और है कि लोग उनके बारे में एक दूसरी ही राय बनाये रहते थे।

मुझे भी नेमी बाबू की पहचान के सिनेरियो में बताया गया था कि जब कभी दीपक की मद्धम रोशनी में कोई बूढ़ा आखिरी हिचकी लेता हिस्ट्री, जागरफी और राजनीतिक फ्लॉसफी में दंभ के साथ बड़बड़ाता दिखाई दे तो समझो वह आदमी कोई और नहीं, अपने नेमी बाबू होंगे।

उस पहले परिचय में ही कुछ ऐसा ज़रूर था जो मेरे लिए अजीब तो था लेकिन अपील करने वाला भी था। शायद यही वजह थी कि पब्लिकेशन-हाउस की नौकरी के पहले ही दिन नेमी बाबू मेरी डायरी का पहला पन्ना बन गये थे।

चाय की चुस्कियों के बीच पब्लिकेशन के मालिक, उनके दफ्तर और प्रिंट-मीडिया की दिक़्क़तों पर बातचीत होती रही। अचानक उन्होने मानो खुल जा सिम-सिम का कोड लगाकर बड़े ही राज़दाराना अंदाज में खुफ़िया दरवाजे पर दस्तक दी, 'नया खून है। नए खून में ही इंक़लाब उबलते हैं। तुम्हारे टेस्ट-पेपर्स मैने ही सेट किये थे। जांचा भी मैंने ही था । इंटेलिजेंट हो। सोच भी प्रोग्रेसिव है जैसी कि हर 21 से 25 साल के नौजवान की होती है। सिस्टम यहीं पर यूथ को सही इस्तेमाल करने के बजाये, बंधुआ मज़दूर की तरह उसे निचोड़ने में लग जाता है। यहां भी यही होता है।

नेमी बाबू! यानि सीनियर सब-एडिटर।

बेहद चर्चित और विवादित नाम। उनके सामने आते ही बड़े से बड़े पत्रकार और बुद्धजीवियों की रीढ़ में कंपन-सा तैर जाता था। मैं लाख खुद को इनसाइक्लोपीडिया क्यों न समझता हूँ, नेमी बाबू को लेकर बिलकुल भी सहज नहीं हो पा रहा था। समझ में नहीं आ रहा था कि नेमी बाबू की बगल में बैठकर मैं काम कर भी पाऊंगा या नहीं?

सम्पादकीय विभाग के युवा-साथियों ने हौसला बढ़ाया तो कहीं तक अवचेतन में बैठे नेमी बाबू के ह्यूले के डर पर मेरी पकड़ मज़बूत हुई और उस रात नेमी बाबू को समझने के लिये मैं अपनी बैठक में देर तक उनके लेख और विचार पढता और खुद उन्हें समझने का प्रयास करता रहा। निश्चय ही कोई भी व्यक्ति उनकी लेखनी का क़ायल हो सकता था। मगर ताज्जुब यह था कि इतना बड़ा पत्रकार प्रिंट-मीडिया में वर्षों से सीनियर-सब-एडिटर की पोस्ट पर कुंडली मारे क्यों बैठा है?

अगले दिन अपने पूरे आत्मविश्वास के साथ मैं अपने केबिन में पहुँचा तो नेमी बाबू अपने केबिन में मेरा इंतज़ार करते हुए मिले। सुबह ही सुबह खीज सी हुई कि पता नहीं नेमी बाबू की बगल में

बैठकर मैं काम कर भी पाऊंगा या नहीं? तभी नेमी बाबू ने कहा, 'तुम्हारे साथ चाय पी सकता हूँ ? वैसे भी हमें अपने काम को लेकर प्रोफेशनल डिस्कशन तो करना ही होगा क्योंकि बॉस ने तुम्हें मेरे साथ अटैच किया है। एक फोन करके आता हूँ।"

तुम लिखोगे, क्रेडिट फ्यूडल-एडिटर लेगा। क्योंकि वही प्रकाशक भी है। एडिटर है तो शीर्ष सम्पर्क और सुविधाएँ भी उसकी होंगी। इज़्ज़त, नाम, शोहरत और पैसा, सब उसका होगा। तुम सिस्टम का मोबिल-ऑयल होकर ऐंजिन को स्मूद करते हुए उसे लाइफ-लाईन देते रहोगे। ऐसी कहानी दोहराओगे तो तुम्हारा रंग मेरी तरह काला पड़ जयेगा। यही व्यवसाय तंत्र का जुगराफिया है। मेरे विचार से तुम्हें यहां अपना समय नहीं गंवाना चाहिये। यह संस्था युवा-प्रतिभाओं का कोल्ड्स्टोरेज है। इसमें हैवी फ्रीज़र हैं। तुम भी एक दिन फ्रीज़ होकर रह जाओगे।'

"आप शायद सही हों. लेकिन----" मैंने साहस जुटाकर अपनी बात रखी, "एक्सपीरियंस के लिये मुझे यहाँ नौकरी करनी ही होगी। अदरवाइज़-----।" बात नेमी बाबू के पाले ने गुपच ली। बताया कि मंदी अपना कितना ही असर दिखाये, मीडिया पर ताले कभी नहीं लगेंगे क्योंकि यह एक प्राफेटेबिल इंड्स्ट्री है। जब तक दुनिया में राजनीति है, तब तक समाज और देश के बीच मीडिया है। मीडिया मीन्स, पॉलिटिकल लायज़निंग जिसका कारोबार कार्पोरेट सेक्टर के कंधे से कन्धा मिलाकर चलता है और कार्पोरेट सेक्टर समाज और देश में देवताओं व समाज सुधारकों के लिए जन्म नहीं लिया करते हैं बाबू मोशाय। इसलिए जो मैं कह रहा हूँ, उस पर ध्यान दो। आज बस इतना ही....।"

अचानक कुर्सी की पीठ से टिक कर नेमी बाबू हांफने से लग गये थे। गर्दन पीछे डालकर वह ऐसे खोये मानो दुनिया समाप्त हो चुकी है और इंसान से इंसान का रिश्ता महज़ किताबों से ज़्यादा कुछ भी नहीं रह गया है।

इंटरकॉम की बेल बजी तो मैं मानो डूबते जहाज़ से उछलकर ऊपर आ गया। बॉस का पीए हिदायत देते हुए मुझे समझा रहा था कि "बॉस का आदेश है कि काम पर ध्यान दो और साथ ही नेमी बाबू को भी काम करने का मौक़ा दो। नए हो, इसलिए बता रहा हूँ कि लम्बी चाय की पत्तियां मज़दूर के ग्लॉस का ज़ायक़ा बिगाड़ दिया करती हैं। समझे बरखुरदार?"

आज पहले ही दिन मुझे महसूस हुआ कि आते ही संवाद के बीच शंकाओं का बवंडर आया और पास से होकर गुज़र गया। बड़े बाबू ने इशारों-इशारों में कितना कुछ समझा दिया है। कहीं, मैं भी कोई विवाद तो बनने नहीं जा रहा हूं?

नेमी बाबू के बारे में कोई कुछ भी कहे, अव्यवहारिक, अक्खड़, अभद्र या जो भी, मैं उन्हें आम लोगों से बहुत ऊपर का मानने लगा था। बहुत कुछ सीखने को मिला था उनसे। काम के दौरान कभी लगा ही नहीं कि वह मुझसे बहुत सीनियर हैं और मैं उनके अंडर काम करता हूँ। उन्होंने काम के दौरान मुझे कभी डिस्टर्ब नहीं किया, अलबत्ता मैं ही उन्हें अक्सर डिस्टर्ब करने लग जाया करता था। कभी चाय के बहाने तो कभी अपना एडिटोरियल चेक कराने के बहाने, उद्देश्य एक ही होता कि मुझे उनके साथ बैठने का अवसर मिले, वह मुझसे साहित्य, राजनीति और इतिहास पर बात करें, मेरे लिखे पर अपनी टिप्पणी दें।

सच कहूँ तो मै स्वत: ही उनके करीब होता जा रहा था। लोग तो यह तक बताते हैं कि नेमी बाबू प्रेस की कैन्टीन में पहले कभी नहीं देखे गये। शायद कैंटीन में उन्हें ले आने का श्रेय भी मुझे ही

जाता है। यहां भी वह अपने आपमें खोये हुये थे। मैं तो मानो उनके लिए कोई अजनबी युवक था। लग ही नहीं रहा था कि मैं उनका कलीग हूँ। टेबल पर लंच आया तो सनकियों की तरह उनकी निगाह रोटियों पर अटककर रह गई मानो सर्राफ के हाथों ग्राहक ने कोई ज़ेवर थमा दिए हों। नेमी बाबू का चेहरा कुछ विकृत सा होता दिखाई देने लगा था। मैंने देखा और महसूस भी किया कि पहले निवाले पर ही वह दार्शिनिक से हो गये थे। फिर, पहले की ही तरह अपलक देखते रहने के बाद नेमी बाबू कुछ कहते सुने गये, "कितना अटूट रिश्ता होता है रोटी का इंसान के साथ....।"हाँ! वह तो है।" निवाला मुंह तक पहुँचते-पहुँचते रुक गया था। उनकी निगाह मानो मेरी आँखों की अथाह गहराइयों में उतरती जा रही थीं, "कला भी तो रोटी से ही जन्मी है बाबू मोशाय! अलहुमरा के तिलस्मी महलों की बुनियादें हों या अजंता-एलोरा की गुफ़ाएं, मिस्र के अहराम और पिरामिड हों या मुहब्बत के ताजमहल, कालिदास की शाकुंतलम हो या मिलटन की पैराडाइज़ लॉस्ट, सबके पीछे की कला का जन्म रोटी से ही तो हुआ था। सोचो! सोचो बाबू मोशाय, जब भी रोटी का रिश्ता कळा से टूटा तो हुस्न बाजार में नीलाम होने के लिये आ गया। धर्म अर्थहीन हो गया और भूख ने तमाम ह्यूमन-वैल्यूज़ का गला घोंट दिया। दूसरे विश्व महायुद्ध की बात छोड़ो, अपने बंगाल के अकाल को याद करो, क्या हुआ था....?"

चंद लम्हों में क्या कुछ नहीं कह दिया नेमी बाबू ने!

"रोटी के लिये ही तो हम लाला की नौकरी करते हैं, उसके आतंक को सहते हैं। अपना मान-सम्मान गिरवीं रखते हैं। उसकी हर बेहूदा बात का न चाहते हुये भी समर्थन करते हैं।" नेमी बाबू अपनी धुन में बिना विराम लगाये कहे जा रहे थे, "इसीलिए मैंने कहा था कि यह जगह तुम्हारे लिये नहीं है। तुम उड़ान भरो, आसमान हमेशा से नये परिंदो का स्वागत करता आया है।" कुछ पलों के लिये तो मैं हत्प्रभ सा रहा लेकिन शिराओं में इतनी ऊर्जा भर गई कि ठीक से मैं लंच भी लेने योग्य नहीं रहा। बस! यही मन करता कि नेमी बाबू बोलते रहें और मैं उन्हें सुनता रहूँ। उस समय वह जीवन की एक खुली किताब जैसे लग रहे थे जिसमें अनगिनत अध्याय थे जिन्हें अभी तक किसी ने ठीक से पढा न हो लेकिन सच्चाई यह है कि मैं इस किताब को अब पढ़ लेना चाहता था।

'देखो मित्र!" नेमी बाबू कह रहे थे....."उम्र का सफ़र काफी-हाऊसों के प्यालों से उठने वाले धुएं जैसा होता है, जहाँ न बहसें ठहरती हैं न कोई वाद। बहस, बराय-बहस बन जाती है। ऐसी जगहों पर सूडो-इंटलैक्चुअल्स कुछ ज़्यादा ही ऐटीट्यूट शो करते हैं जबकि लाईफ़ की रियलिटी का उनसे कोई सरोकार नहीं होता है।" मैंने देखा, नेमी बाबू अपनी बात रखते हुये कुछ परेशान से नजर आने लगे थे। लंच लेने के बाद मैंने कहा, चलें?

"आँ, हाँ! तुम अपने मोबाईल का नंबर मुझे ज़रूर दे देना। ज़रुरत पड़ सकती है । है कि नहीं?"

मैंने कहा,"क्यों नहीं। "

अपने स्वभाव से मजबूर नेमी बाबू कई दिनों से ऑफिस से लापता थे। उनका सहायक होने की वजह से उनके प्रति मेरी चिंता स्वाभाविक थी। कई फाइलें उनके न आने से क्लियर नहीं हो पा रही थीं। ऐसी स्थिति में अब मुझे उनका अभाव महसूस होने लगा था। मेरे लिए वह अब किसी इन्टीट्यूशन से कम नहीं रहे थे। हर दिन मैं उनसे कुछ न कुछ सीखता आ रहा था। जैसे, 'अपनी इंगलिश को मज़बूत करो। इसके बिना जर्नलिज़्म में सर्वाइव करना मुश्किल हो जायेगा।'

'हिंदी रोटी दे सकती है, सब एडिटर बना सकती है, सरकार में हिंदी ऑफिसर की पोस्ट दिला सकती है, मीडिया में इज़्ज़त नहीं दिला सकती, इंटरनेशनल फेम नहीं दे सकती। उसके लिए तुम्हें अंग्रेजी में बोलना, लिखना और रिपोर्टिंग करना आना चाहिये, और तुम यह जंग जीत सकते हो क्योंकि तुम मासकॉम से निकले हो।'

उनके अभाव में स्वतः ही पलकें नम हो गईं। नेमी बाबू ने तो मुझे नई दिशाएं दिखा दी थीं। इतना तो मेरे माता-पिता ने भी मुझे कभी नहीं समझाया था।

ऑफिस के सीनियर चपरासी पन्डित गजोधर पांडे को 'सेवा-संपादक' कहा जाता था। लोग बताते हैं कि यह नाम भी उन्हें नेमी बाबू ने ही दिया था। उनकी रिहाइशगाह का पता भी मुझे गजोधर पांडे से ही हासिल हुआ क्योंकि वह अक्सर किसी न किसी काम से बड़े साहब के आदेश पर उनके फ़्लैट पर जाते रहते थे।

वह दिन शायद रविवार का था। जल्दी से तैयार होकर उपलब्ध पते पर पहुंचा तो यह देखकर मेरी ख़ुशी दोगुनी हो गई कि नेमी बाबू अपने कमरे में आसानी से अलसाई उबासियों के साथ उपलब्ध हैं। गर्द से सना सोफ़ा झाड़कर नेमी बाबू जमुंहाई लेते हुए बोले, "बैठो, यहाँ ऐसा ही बिखराव रोज़ देख सकते हो। मकान और घर के बीच का अन्तर तुम्हें यहीं नज़र आ जायेगा। रात थोड़ी सी पी ली थी, वह भी देसी! देसी दारू का नशा भी उस बेरोज़गार या बीमार पति की मजबूर पत्नी के साथ किये जाने वाले यौनाचार के आनन्द जैसा है जिसे देकर औरत अपने घर का खर्च चलाती है।"

अजीब से ठठाकर हँसते हुये नेमी बाबू बोले, "कल रात मै भी किसी हाई-प्रोफाइल कॉकटेल पार्टी मे चला गया था।" स्लीपर डाले वह तत्काल दनदनाते हुये तंग सीढियाँ उतर गये। इस बीच मैं नेमी बाबू के कमरे का बाकायदा जायज़ा लेने लग गया था। एक अव्यवस्थित व्यक्तित्व जैसा बिखराव भरा कमरा जिसमें शराब की ख़ाली बोतलें, धूल-धूसरित किताबें, अख़बार, पत्रिकाएं और बेहद मैला-कुचैला अस्त-व्यस्त सा बिस्तर, चंद जूठे बर्तन और मकड़ियों के जाले के सिवा वहाँ ऐसा बहुत कुछ बिखरा हुआ था जिसका विस्तार से ज़िक्र किया जा सकता है लेकिन मेरी नज़र दीवार पर टँगी उस महिला की तस्वीर पर जाकर अटक गई जिसमें माँ होने के सारे लक्षण स्पष्ट परिलक्षित थे।

"यह माँ का पिक्चर है।" पीछे से नेमी बाबू की आवाज़ सुनकर मै चौंक उठा था। मुड़ कर देखा तो पाया कि वह गर्म चाय के गिलास पकड़े फूले नहीं समा रहे है, "स्पेशल चा लाया है मैं। फर्स्ट टाइम तुम इदर आया है। इस वास्ते!"

माँ की तस्वीर ने नेमी बाबू को बेहद संजीदा कर दिया था।

"सौतेली माँ के आतंक से पीड़ित होकर जब मैं घर से निकला था तो तन पर कमीज और नीकर के सिवा कुछ भी न था। जाड़े की उस रात अजनबी सन्नाटे के बीच बन्द बाज़ार के किसी अजनबी हलवाई की भट्टी की गुनगनी राख पर तीन की इकाई बनकर मैं सो गया था। पता नहीं कब उसी जगह एक कुत्ता मेरे पास आकर लेट गया। हम दोनों सुबह तक बेखबर सोते रहे। उस रात मुझे ऐसा लगा जैसे मेरी बगल में माँ आकर सो गई हो।" नेमी बाबू गीली पलकें साफ़ कर जबरन हंस दिये, "कमाल की बात है बाबू मोशाय! उस रात पहली बार मुझे मालूम हुआ कि माँ सिर्फ़ माँ होती है, न सगी और न ही सौतेली। माँ मेरे पास 5 साल तक रही। यदि वह एक्सीडेंट में मर न जाती तो आज हमारे बीच होती।"

उस दिन हम दोनों तब तक साथ रहे जब तक नेमी बाबू हावड़ा मेल में बैठ नहीं गये। वह उस ट्रेन से कोलकता जा रहे थे।

"उधर मेरा एक पेंटर दोस्त रहता है। इन दिनों उसे भी सपने देखने की बीमारी लग गई है। सपनों में वह खुद को पिकासो के साथ देखता है। फ़िदा हुसैन और नन्द लाल बसु उसकी पेंटिंग की तारीफ़ करते दिखाई देते हैं और यामिनी राय? पूछो मत।"

स्टेशन पर चाय की चुस्की लेते हुए मै नेमी बाबू के निचुड़े हुये चेहरे पर एकाएक उभर आई झुंझलाहट को साफ़-साफ़ पढ़ने लगा था। उसी झुंझलाहट भरी मुद्रा में नेमी बाबू बोले, "इसे रिएलिटी से भागना कहते हैं!"

"जी!" मैंने कहा।

इसपर नेमी बाबू आश्वस्त से हो शिकायत करना ज़ारी रखते हैं, "भूखे पेंटर को रोटी नहीं, शोहरत चाहिए। वह शोहरत आर्ट-गेलरीज़ में है। आर्ट-गेलरीज़ मायानगरी के बाज़ारों की चकाचौंध से ऑक्सीजन लेती हैं। वहां की हाईप्रोफाईल पर्सनालिटीज बॉयर्स कला को अपनी विलासिता के लिये खरीदते हैं और पुरस्कार भी हासिल कर लेते हैं। कलाकार का सम्मान करने के लिये उनके पास समय नही होता है। तुम .....बोर तो नहीं हो रहे हो बाबू मोशाय?"

"नहीं सर!"

"हाँ! आतिरा के बारे में-----।" उन्हें लगा जैसे उन्हें मेरे सामने आतिरा का नाम नहीं लेना चाहिये था लेकिन अजाने में ही सही, तीर धनुष से निकल चुका था। वह कुछ झेंपते से बोले, "अरे वोई....अपने पेंटर बाबू का वाइफ़!"

मुझे नेमी बाबू उस समय किसी अबोध बालक की तरह दिखाई दिये। एक असफल प्रेमी जैसे भी। इस ख़्याल के अहसास से ही मैं रोमांचित सा होने लगा था। इस उम्र में क्या नेमी बाबू किसी से इश्क करने लगे हैं?

"जब तक माँ ससुराल में रहीं, वहां के लोग उन्हें नासूर समझते रहे। जब वह नहीं रहीं तो मेरे अपनों ने मुझे माँ के नासूर का निशान समझ लिया बाबू मोशाय! इसलिए कि मैं कहीं अपने पिता की सम्पत्ति में अपना हिस्सा न माँग बैठूँ।"

भावनाओं के बादल गरजे। आँखें बरसीं, फिर जैसे आसमान साफ़ हो गया। नेमी बाबू खिड़की से लगकर अपनी किताब के पन्ने एक के बाद एक कर पढ़ते जा रहे थे। हर पन्ने पर उनकी आतिरा उभरकर सामने आ जाती थी। आतिरा, यानी पेंटर बाबू की पत्नी। उसकी वाईफ़ यानी मुहब्बत के दरिया के ठहरे पानी पर उठने वाळी लहरें! "आतिरा ने फौलाद बना दिया है मुझे। वह कहती है, इश्क़ खुदा की नेमत है। सबको नहीं मिलती। यह उसकी आस्था की भाषा है। यहां मैं गूंगा हो जाता हूँ लेकिन अवचेतन में यह आस्था घर कर लेती है कि यदि ईश्वर है तो वह मनुष्य को सहनशक्ति और भूलने की आदत बिना शर्त के देता ही होगा, नहीं तो-----।"

उस समय हम उर्दू बाजार स्थित पनवाड़ी की दुकान के पास खड़े थे और पड़ोस में स्थित ढाबे के सामने भिखारियों की भीड़ उछाली जाने वाळी रोटियों पर झपट्टे मार रही थी। उन्हीं में आवारा कुत्ते भी शामिल थे। एक-दो बार ऐसा हुआ कि एक ही रोटी पर भिखारी और कुत्ते एकसाथ झपटे और रोटी को लेकर परस्पर झपट पड़े। मेरे लिए यह एक अजीब सा दृश्य था। क्या 21वीं सदी में आज भी लोग अपने अस्तित्व को बचाने के लिये रोटी की खातिर सड़क के आवारा कुत्तों के साथ संघर्ष कर रहे हैं? यह तो शर्म की बात है लेकिन कमाल की बात यह है कि भिखारी के स्वभाव में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया।

मैंने देखा नेमी बाबू बड़बड़ा रहे थे महान भारत की छवि! इक्कीसवीं सदी और रोटी, रोटी बनाम आदमी, आदमी बनाम कुत्ते! पता नहीं आदमी अपने अधिकार छीनने का हुनर कुत्तों से कब सीखेगा!

उस रात रोटी हमारी यायावरी का विषय बनकर रह गया था। न तो पैदल चलते रहने से नेमी बाबू थक रहे थे और न ही बातें करते रहने में हम।

देखा बाबू मोशाय! रोटी के लिये हम अपना मूल्यवान आत्म-सम्मान तक खो देते हैं। है न अजीब बात रोटी कोई खरीदता है तो कोई उसे बेच देता है। जो बेचता है उसके पास देश-दुनिया की आर्थिक व्यवस्था है। जो खरीदता है वह उपभोक्ता है। उपभोक्ता वर्ग की सत्ता स्वतंत्र नहीं कार्पोरेट के अधीन होती है। कार्पोरेट व्यवस्था का रोबोट होता है जिसके पास संवेदनाएं नहीं होती हैं। यहीं से विरोधाभास और विद्रोह के अंकुर फूटते हैं। लेकिन बाबू मोशाय! द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद दुनिया में आई क्रांतियों के स्वरूप पूरी तरह से बदल गये हैं क्योंकि संसार अब ग्लोबल-विलेज बन चुका है।

उस रात की यायावरी मुझे आज भी याद है। काश! नेमी बाबू से मिलकर मैं उन यादों को आपस में बाँट पाता। उस रात के बाद तो नेमी बाबू मानो भूमिगत से हो गये थे। ऑफिस में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो मुझे उनके बारे में सही जानकारी दे पाता। अकसर मुड़-मुड़कर मैं बगल वाले चेंबर की ओर देखता कि शायद वह आकर काम में व्यस्त हो गए हों। उनकी फाइलें भी अब मैं ही निबटा दिया करता था। बॉस के आदेश भी कुछ इसी तरह के थे। लेकिन मेरे खालीपन को कोई नहीं भर पा रहा था। इसे भरने के लिए मैं कई बार उनकी रिहाइश की तरफ भी गया कि शायद उनके कमरे की खिड़की से धुआं बाहर आता दिख जाए या रात को रौशनी झांकती हुई मिल जाए, मगर सब बेसूद।

एक दिन सचमुच चमत्कार सा हो गया। संसदीय चुनाव पर मैं सम्पादकीय लिख रहा था। उस समय फोन साइलेंट मोड पर था कि अचानक उस पर नेमी बाबू का नम्बर फ़्लैश करने लगा। पहले तो मुझे विश्वास नहीं हुआ, लेकिन फिर..... ।

"नेमी ....फ्रॉम कोलकता.....।"

फोन से पता चला कि नेमी बाबू अपने पेंटर दोस्त दिवाकरन के घर पर उसकी देख-भाल में आतिरा का हाथ बटा रहे हैं। आतिरा ने ही फोन पर नेमी बाबू को सूचित किया था कि कार-एक्सीडेंट में उसके पति दिवाकरन की बैक-बोन डैमेज हो गई है। नेमी बाबू बिना देर किये फ़्लाईट पकड़ कोलकता पहुँच गए। अब वह अपने दोस्त के घर को बड़ी कुशलता से संभाले हुये हैं। आतिरा काजोल यानि नेमी बाबू की जिंदगी। आतिरा के बारे में मुझे अब विश्वास होने लगा था कि 'यह इश्क़ नहीं आसां, बस इतना समझ लीजे।"

अगले दिन सेवा संपादक जी बिग बॉस का आदेश लेकर आये कि नेमी बाबू क काम आज से मैं देखूँगा । इस सिलसिले में 11 बजे मेरी साहब के साथ ऑफिशल मीटिंग भी है। आदेश का पालन करते हुए मैं बॉस के चेंबर पहुँचा तो उन्हें कुछ लम्हों तक काम में बिज़ी पाया। मैंने भी उन्हें डिस्टर्ब नहीं किया। काम के बीच उन्होंने ही पूछा, "नेमी ने बताया कि दिवाकरन कैसा है?"

सुनकर मेरा चौंकना स्वभाविक था। बॉस ने गर्दन उठाकर उड़ती नज़र से मुझे देखा और पहले की ही तरह अपने काम में व्यस्त हो गये। उन्होंने मेरा जवाब सुने बगैर अपनी बात जारी रखी, "नेमी का काम अब तुम देखोगे। उसकी विरासत को तुम बेहतर तरीके से संभाल सकते हो। वह शायद अब लौट कर न आये। उसकी ज़िन्दगी ऐसे ही अंधड़ों से भरी रही है। मैं भी अब रिटायरमेंट लेकर नई

जनरेशन को विरासत सौंपना चाहता हूँ।" बॉस कुर्सी से पीठ सटाकर आराम से बैठ गये थे। शीशे के उस पार चेंबर में बॉस के बड़े पुत्र अनिल मोदी बैठे दिख रहे थे। वह बीच-बीच में मुझे देख लेते थे। फिर वह स्वयं ही चलकर अपने पिता के चैम्बर मे आ गये, पूछा, "नेमिशरण काम पर लौटे कि नहीं?" पिता ने 'कूल डाउन, कूल डाउन' कहकर सोफे की तरफ इशारा किया, "बैठ जाओ! सब ठीक हो जायेगा। इतना एग्रेसिव नहीं होते हैं।"

"एक आदमी कंपनी को अनाथालय बनाये सिस्टम को डिस्टर्ब कर रहा है और बाबू जी, आप कहते हैं, सब ठीक हो जायेगा। कब ठीक होगा? मैं इस इमोशनल ड्रामे का फेड-आउट चाहता हूँ। आपके इस ड्रामे का कंपनी के स्टाफ पर गलत असर पड रहा है। वैसे भी मैं नहीं चाहता कि मेरी कम्पनी में कम्युनिस्टों की घुसपैठ हो।"

"नेमी की वजह से मुझे कितना-कुछ सुनना पड़ता है। लेकिन वह नहीं सुधर सकता, स्टूडेंट लाइफ से ही वह ऐसा है।" बॉस मेरे सामने अपना दर्द उँड़ेलने लगे थे। अनिल फोन पर बातें करते हुये चेंबर से बाहर निकले तो बॉस थोड़ा आगे झुक आये, "तुम नई जनरेशन के साथ यही ट्रैजडी है कि तुम लोग संवेदनहीन हो. रातों-रात अडानी-अम्बानी और सिहानियां बन जाना चाहते हो, लेकिन -----"

"नेमी सर बहुत अच्छे इंसान है, बहुत काबिल भी। वह आपके साथ पढ़ते थे?" मैंने कहा, "बहुत कुछ सीखने को मिलता रहा है सर!"

"मेरे साथ नेमी और आतिरा भी थे। आतिरा, नेमी की तरह बँगाली थी। दिनाजपुर से पढ़ने आई थी। सांवली, सलोनी, इंटेलिजेंट पर कुछ-कुछ मेन्टल सी! पेंटर से प्यार करती थी। हैन्डसम था दिवाकर। प्राब्लम यह थी कि आतिरा दिवाकरन से प्यार करती थी और नेमी आतिरा से। नेमी ने कभी अपने प्यार का प्रदर्शन नहीं किया। उधर आतिरा ने भी कभी नहीं बताया कि उसे नेमी पसन्द नहीं है। जब उनकी मेरे ही घर में शादी सम्पन्न हुई तो नेमी उसमें शरीक नहीं हुआ। सालों तक उसका कोई पता नहीं चला कि वह कहाँ है। जब आया तो बेहद खस्ताहाल में।"

राज़ खुले तो यह भी पता चला कि नेमी बाबू बहुत प्रतिभाशाली थे। प्रकाशन संस्थान ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को खोना नहीं चाहता था। उसकी प्रतिभा से लाभान्वित होना चाहता था इसलिए उन्हें प्रकाशक ने संस्था से जोड़ लिया। नेमी बाबू यहां से कहीं और गये भी नहीं, लेकिन उनका फक्कड़पन और उनकी यायावरी बराबर जारी रही ।

"ज़रूरी नहीं कि हाथों की हर अंगूठी तकदीर के करिश्मे दिखाए। कुछ पत्थर रंग भरने के लिये भी होते हैं। मेरे बिज़निसमैन बेटे ऐसे ह्यूमन-रिलेशन और वैल्यूज़ को मान्यता नहीं देते। यही पीढ़ियों के बीच का अन्तर है।"

मुझे लगा, नेमी बाबू मेरी उम्र के हो गये हैं।

वह दिसम्बर की एक रात थी। किसी को सीआफ कर मैं स्टेशन से घर लौट रह था। ठण्ड थी कि गर्म कपड़ों को भी भेदकर सुई की तरह चुभ रही थी। बाइक पर चलना दुश्वार हो रहा था जबकि दोनों हाथ ग्लव्ज़ से ढके हुये थे । आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुये नाका चौराहे पर चौरसिया पान भंडार के पास बाइक खड़ी कर पान बनवाने ही जा रहा था कि बड़े ही अप्रत्याशित ढंग से नेमी बाबू सामने आ गये। मुझे वह उस समय एक ऐसे दरख़्त की तरह लग रहे थे जो हवा में झूलने लगता है । कच्ची शराब

की दुर्गन्ध यानी उसका भभका आया और पीछे धकेलकर आगे निकल गया। नेमी बाबू को देखकर मैं खुशी से फूला नहीं समा रहा था।

और धुंध से भरी उस रात एक बार फिर हम यायावर होकर सड़कों पर आवारगी करने लग गये थे। आज मेरे भीतर भी छुपा हुआ अपरिपक्व कवि मुखर हो उठा था। नेमी बाबू ने मुझे भी सुरूर के अजाने तालाब में ऐसा धकेल दिया था कि बस, हवा के कंधों पर सवार होकर मैं उड़ता ही चला जा रहा था। बाईक के पीछे बैठे नेमी बाबू क्या कह रहे थे, मैं उनसे क्या सुन रहा था, इसका मुझे बिल्कुल भी इल्म नहीं था। एक तरह की ख़ुशी ज़रूर थी, अहसास था कि नेमी बाबू कोलकत्ता से लौट आये हैं और अब हम फिर से एक साथ काम कर सकेंगे।

उस सुरूर में पता ही नहीं चला कि हम शहर के कर्फ्यूग्रस्त क्षेत्र में आ गए हैं। हर तरफ़ सन्नाटा पसरा हुआ था। नेमी बाबू को ज़ोर का पेशाब लगा तो वह सड़क के किनारे ही पजामा खोलकर पेशाब करने लगे, मैं उनका अनुकरण करने लगा। दूर से हेडलाइट्स करीब आती दिखाई दीं। नेमी बाबू लहराते हुए भी संभल गये, बोले, " हमें इधर नहीं आना चाहिये था। तुम्हें पता होना चाहिए था कि इधर दंगा हो चुका है।"

बीड़ी सुलगाकर उन्होंने कहा, "जब दंगे होते हैं तो आदमी की पहचान छिन जाती है बाबू मोशाय! गरीबों की बस्तियों की आग और रईसों के मकानों पर हथियारबंद पुलिस पहरा देती है। समझे? यह लो... बाबू मोशाय! बोतल खाली किये देते है। तुम भी क्या याद करोगे । चलो जल्दी करो, इधर मेरे को कुछ ठीक नहीं लगता है। अपन लफड़ा नहीं मांगने का। इधर देर तक रुकने का भी नहीं.....।"

इसी समय दो आवारा कुत्ते परस्पर लड़ते हुये हलवाई की दुकान की भट्टी की ओर चले गए। भट्टी की राख पर पहले से ही कुण्ड्ली मारे कुत्ते बदन को गर्मी देने में लगे हुये थे। नेमी बाबू को अकस्मात हँसी सी आ गई थी।

मुझे लगा मानो मैं अब बाईक नहीं चला पाऊंगा। नशा सर चढ़कर बोलने लगा था। नेमी बाबू की आवाज़ भी अब दूर से आती महसूस हो रही थी। रोशनियों के समंदर में मानो जहाज़ों का बेड़ा मुझे उडाए लिये जा रहा था। कानों से बहुत सी आवाज़ें टकराने लगी थीं। बहुत सी आवाजें, बहुत सी सीटियों के बजने का शोर। फिर...?

आँख खुली तो खुद को हवालात में पाकर मुझे आश्चर्य हुआ। आश्चर्य यह कि मेरे साथ नेमी बाबू किसी भी कोने में नहीं थे। रात पकडे गए असामाजिक तत्वों में पुलिस ने मुझे भी शामिल कर लिया था।

नेमी बाबू के बारे में मुझे किसी से कोई भी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाई। यदि आपको उनके बारे में कुछ भी पता चले तो मुझे ज़रूर बताइयेगा।

मुझे अभी उनसे पता करना है कि इंसानों की बस्तियों में आज भी दंगे क्यों होते हैं?

झरता हुआ राग

चंद्रकांत सिंह

पहाड़ों से गिरते हुए झरने
कितने आनंद में गिरते हैं धरती पर
एक अव्यक्त संगीत की ध्वनि
कौंधती है मन के भीतर
एक सोया राग जगा जाता है
वीणा के सुप्त स्वरों को
एक अविराम सुख डोल उठता है लबों पर
जिसके स्पर्श से खुलते हैं रंध्र
मिटती हैं मलिनता की किरणें
हृदय पहले से कहीं अधिक डूबता है सुन्दर में
शान्ति का अनूठा ढंग
पूरी चेतना को भरता है पुलक से
निर्झर राग गूँजता है पोर-पोर में
जिसकी प्रतिध्वनि से
खिल उठता है हृदय कमल.

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी	
संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम	
संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित